हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agrisearch with a human touch

मत्स्य लोक

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
कैनाल रिंग रोड, पो.दिलकुशा, लखनऊ-226002

भाकृअनुप
ICAR

NBFGR
ISO 9001:2008

राजभाषा गतिविधियों की झलक

संस्थान में राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को प्रोत्साहित करने हेतु प्रत्येक वर्ष हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन किया जाता है। इस दौरान संस्थान के सदस्यों हेतु विभिन्न हिन्दी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है और विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं।

संस्थान में हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह **2013** के अवसर पर निदेशक द्वारा सम्बोधन

समारोह के दौरान बोलते हुए विशिष्ट अतिथि
श्री हरिमोहन बाजपेई 'माधव'

समारोह के दौरान प्रभागाध्यक्ष डॉ. एन.एस. नागपुरे द्वारा
आशुभाषण प्रतियोगिता में प्रतिभाग

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
Agrisearch with a human touch

मत्स्य लोक

क्रमांक : 3 वर्ष : 2013

भाकृअनुप
ICAR

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
कैनाल रिंग रोड, तेलीबाग, पो.ऑ. दिलकुशा, लखनऊ-**226 002**, उत्तर प्रदेश
फोन : (0522) 2441735, 2442440, 2442441, 2440145 फैक्स : (0522) 2442403
ई-मेल : nbfgr@sancharnet.in; director@nbfgr.res.in
वेबसाइट : www.nbfgr.res.in

NBFGR
ISO 9001:2008

मुख्य संरक्षक
डा. एस. अय्यप्पन
सचिव, कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग, भारत सरकार एवं महानिदेशक,
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली

संरक्षक
डा. बी. मीनाकुमारी
उप महानिदेशक (मात्स्यिकी), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली

संकल्पना एवं मार्गदर्शन
डा. जे.के. जेना
निदेशक, राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

सलाहकार मंडल
श्री हरीश चन्द्र जोशी, निदेशक (राजभाषा), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली
डा. एन.एस. नागपुरे, विभागाध्यक्ष, रा.म.आ.सं. ब्यूरो, लखनऊ
डा. कुलदीप कुमार लाल, विभागाध्यक्ष, रा.म.आ.सं. ब्यूरो, लखनऊ
डा. पीयूष पुनिया, विभागाध्यक्ष, रा.म.आ.सं. ब्यूरो, लखनऊ
डा. ए.के. सिंह, प्रधान वैज्ञानिक, रा.म.आ.सं. ब्यूरो, लखनऊ
डा. सुधीर रायजादा, प्रधान वैज्ञानिक, रा.म.आ.सं. ब्यूरो, लखनऊ
डा. बासदेव कुशवाहा, प्रधान वैज्ञानिक, रा.म.आ.सं. ब्यूरो, लखनऊ
डा. राजीव कुमार सिंह, वरिष्ठ वैज्ञानिक, रा.म.आ.सं. ब्यूरो, लखनऊ
डा. विजय नारायन तिवारी, वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी, केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
श्री संजय कुमार पाण्डेय, सचिव, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, हिन्दुस्तान एयरोनाटिक्स लिमिटेड, लखनऊ

संपादक
डा. ललित कुमार त्यागी, वरिष्ठ वैज्ञानिक
डा. अखिलेश कुमार मिश्र, तकनीकी अधिकारी एवं प्रभारी अधिकारी हिन्दी

सहायता
श्री अमित सिंह बिष्ट, तकनीकी अधिकारी
श्री राम सकल चौरसिया, वैयक्तिक सहायक
श्री सन्दीप कुमार, आशुलिपिक

आवरण पृष्ठ
कु. सुकृति मिश्रा, कक्षा–5(ब), जागरण पब्लिक स्कूल, लखनऊ द्वारा बनाया गया चित्र जिसे संस्थान द्वारा आयोजित अन्तर स्कूल चित्रकारी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया।

प्रकाशक
निदेशक, राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

इस पत्रिका में प्रकाशित आलेखों एवं रचनाओं में व्यक्त विचार/आंकड़े लेखकों/रचनाकारों के हैं। संपादक व प्रकाशक का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पत्रिका में प्रकाशन हेतु लेख एवं रचनाएं आमंत्रित हैं। कृपया अपनी रचनाएं निदेशक, राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ को प्रेषित करें।

डा. जे.के. जेना
निदेशक

Dr. J.K. Jena
DIRECTOR

भाकृअनुप
ICAR

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
कैनाल रिंग रोड, तेलीबाग, पो.आ. दिलकुशा
लखनऊ - 226 002, उ.प्र.

NATIONAL BUREAU OF FISH GENETIC RESOURCES
Canal Ring Road, Telibagh, P.O. Dilkusha
Lucknow - 226 002, U.P.
Ph. : (O) 2442441, 2441735, 2442440, 2440140, Fax : 2442403
E-mail : director@nbfgr.res.in, nbfgr@sancharnet.in
Website : www.nbfgr.res.in

NBFGR
ISO 9001:2008

प्राक्कथन

राष्ट्र की जलीय सम्पदा के संरक्षण की दिशा में मत्स्य आनुवंशिक संसाधनों का प्रलेखन, सूचीबद्धीकरण एवं उनका लक्षण वर्णन इस संस्थान के प्रमुख कार्य हैं। वर्ष में अनेक महत्वपूर्ण मत्स्य प्रजातियों का अन्वेषण, उनकी आण्विक पहचान की स्थापना, जलकृषकों हेतु उन्नतशील मत्स्य प्रजातियों का निर्धारण करने के साथ ही साथ मत्स्य सेल लाइनों के राष्ट्रीय कोष की स्थापना आदि कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं जो इस संस्थान द्वारा राष्ट्रीय मात्स्यिकी के उज्जवल भविष्य की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है। इन महत्वपूर्ण सूचनाओं को भारत की अधिसंख्य जनता तक पहुँचाने के लिए हमारी राजभाषा हिन्दी से उपयुक्त कोई माध्यम नहीं हो सकता। संस्थान के चिनहट स्थित जलकृषि शोध एवं प्रशिक्षण इकाई द्वारा निरन्तर हिन्दी माध्यम में जलकृषकों को दिया जा रहा प्रशिक्षण निस्संदेह देश में विशेषज्ञ मत्स्य उत्पादकों के रूप में मानव संसाधन विकास के माध्यम से देश में मात्स्यिकी उत्पादन बढ़ाने का कार्य कर रहा है। हमारे इन प्रयासों में संस्थान की हिन्दी गृह पत्रिका 'मत्स्य लोक' का बहुत योगदान है।

ब्यूरो को अपने प्रयासों में परिषद् से सदैव मार्गदर्शन एवं सहयोग प्राप्त हुआ जिसके लिए मैं डा. एस. अय्यप्पन, सचिव, कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग (डेयर) तथा महानिदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली; तथा डा. बी. मीनाकुमारी, उपमहानिदेशक (मात्स्यिकी), भा.कृ.अ.प., नई दिल्ली का आभार व्यक्त करता हूँ। मैं उन सभी लेखकों को भी बधाई देना चाहता हूँ जिन्होंने इस पत्रिका हेतु हिन्दी में अपने लेख/रचनाएं भेजी हैं। इस पत्रिका के नियमित एवं सफल प्रकाशन हेतु मैं पत्रिका के सम्पादकों डा. ललित कुमार त्यागी, वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं डा. अखिलेश कुमार मिश्र, प्रभारी अधिकारी, हिन्दी तथा अन्य सहायक सदस्यों को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि सभी के सहयोग से यह पत्रिका निरन्तर प्रगति करते हुए, जनोपयोगी वैज्ञानिक लेखन की दिशा में सतत् प्रयत्नशील रहेगी।

(जे.के. जेना)

संपादकीय.......

किसी वैज्ञानिक संस्थान के उद्देश्यों की प्राप्ति में उसकी उपलब्धियों को जनमानस की भाषा में उपलब्ध कराना संस्थान का नैतिक दायित्व है। देश के मात्स्यिकी संसाधनों के अन्वेषण, उनके सूचीबद्धीकरण तथा देश के मात्स्यिकी उत्पादन को बढ़ाने हेतु अनेकानेक गतिविधियों में संलग्न इस संस्थान द्वारा प्रकाशित की जाने वाली राजभाषा गृह पत्रिका 'मत्स्य लोक' के प्रवेशांक व द्वितीय अंक को हमारे सुधी पाठकों की अपार प्रशंसा प्राप्त हुई जिसके लिए हम उनका हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। इस पत्रिका की पाठ्य सामग्री की गुणवत्ता एवं उपयोगिता उत्तम बनाने के प्रयास में हम कितना सफल रहे है यह निर्णय हमारे सुधी पाठकों को करना है। पत्रिका के द्वितीय अंक को नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा, लखनऊ नगर स्थित केन्द्र सरकार के अधीन अन्य संस्थानों द्वारा प्रकाशित राजभाषा पत्रिकाओं के समूह में प्रथम पुरस्कार प्राप्त होना हमारे लिए अत्यन्त प्रेरणाप्रद रहा है।

पत्रिका के तृतीय अंक को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त आनन्द की अनुभूति हो रही है। प्रस्तुत अंक को रोचक वैज्ञानिक व सामान्य लेखों, कविताओं व गीतों आदि से सुसज्जित करने का भरसक प्रयास किया गया है जिससे इसकी उपयोगिता में वृद्धि हो सके। विज्ञान व प्रौद्योगिकी के अतिरिक्त, मत्स्य अथवा झींगा पालन, जल प्रदूषण तथा मानव आहार में मछली के महत्व जैसे रोचक विषयों के लेखों को भी सम्मिलित किया गया जिससे पत्रिका एक सामान्य व्यक्ति के लिए भी रूचिकर हो सके।

पत्रिका प्रकाशन में प्रेरणा स्रोत संस्थान के निदेशक आदरणीय डा. जे.के. जेना का हम हार्दिक आभार व्यक्त करते है जिनके कुशल मार्गदर्शन व सतत् सहयोग से यह कार्य सम्भव हो सका। हम इस संस्थान व अन्य संस्थानों के उन सभी लेखकों, रचनाकारों विशेष रूप से भोपाल के आदरणीय डा. परशुराम शुक्ल जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते है जिन्होंने अपने प्रासंगिक लेखों द्वारा पत्रिका में अपना योगदान दिया। संस्थान में राजभाषा नीति के प्रभावी कार्यान्वयन व हिन्दी के प्रोत्साहन हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद मुख्यालय, नई दिल्ली में निदेशक (राजभाषा) श्री हरीश चन्द्र जोशी; सदस्य सचिव, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, लखनऊ श्री संजय कुमार पाण्डेय; हिन्दुस्तान ऐरोनाटिक्स लिमिटेड, लखनऊ तथा डा. विजय नारायण तिवारी, वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी, केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, हमें समय समय पर उचित मार्गदर्शन देते रहे हैं, जिसके लिए हम उनका हृदय से आभार व्यक्त करते हैं। पत्रिका के प्रकाशन हेतु गठित सलाहकार मण्डल के सभी माननीय सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। अन्त में पत्रिका प्रकाशन में सहयोग करने वाले समस्त सदस्यों विशेषकर श्री राम सकल चौरसिया, श्री अमित सिंह बिष्ट तथा श्री सन्दीप कुमार का धन्यवाद ज्ञापित करते हैं जिन्होंने इस कार्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह कामना करते हुए कि यह पत्रिका वैज्ञानिकों शिक्षकों शोधार्थियों, मात्स्यिकी आधिकारियों, मत्स्य पालकों, विद्यार्थियों, प्रसार कार्यकत्ताओं एवं अन्य समस्त पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो 'मत्स्य लोक' का तृतीय अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हैं तथा इसमें सम्भव सुधारों हेतु आपके महत्वपूर्ण सुझावों का सदैव स्वागत करेंगे।

(ललित कुमार त्यागी)
वरिष्ठ वैज्ञानिक

(अखिलेश कुमार मिश्र)
तकनीकी अधिकारी एवं प्रभारी अधिकारी हिन्दी

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन

संपादकीय

<u>वैज्ञानिक लेख</u>

1. **उत्तर प्रदेश की राजकीय मछली चिताला की जैविकी तथा संरक्षण आवश्यकता** 1
कैलाश चन्द्र यादव, विकास साहू एवं सुधीर रायज़ादा

2. **मीठे पानी के महाझींगें का जीव–विज्ञान (एक परिचय)** 4
एस.एम. श्रीवास्तव, ए.के. पाण्डेय एवं कुमारी अपराजिता

3. **एपिजूटिक अल्सरेटिव सिन्ड्रोम** 7
संध्या तिवारी

4. **''जल जीव–पालन, विषानुवांशिकता एवं जैव तकनीकी''** 9
एन.एस. नागपुरे, मोहित तिवारी, रविन्द्र कुमार, वासदेव कुशवाहा एवं महेन्द्र सिंह

5. **''विषानुवांशिकी एवं मत्स्य पालन : एक अध्ययन''** 11
मोहित तिवारी एवं एन.एस. नागपुरे

6. **रंगीन मछली पालन – एक कुटीर उद्योग** 13
संजय कुमार सिंह, पी.के. वार्ष्णेय एवं ए.के. यादव

7. **केज एवं पेन कल्चर** 23
प्रमोद कुमार वार्ष्णेय, संजय कुमार सिंह एवं अखिलेश कुमार यादव

8. **भारतीय सौल मछलियाँ तथा इनके पालन की सम्भावनायें** 31
कैलाश चन्द्र यादव, विकास साहू एवं सुधीर रायजादा

9. **उत्तर प्रदेश की मत्स्य प्रजातियों की विविधता का वर्तमान परिदृश्य** 34
यू.के. सरकार, ए.के. पाठक, वी.के. दूबे, एस.पी. सिंह, जी.ई. खान, एस. रोबेलो, अखिलेश मिश्र, एस.के. मिश्र एवं अमर पाल

10. **'बनाना' झींगा पालन पद्धति** 37
एच.जी. सोलंकी, आर.वी. बोरीचांगर, जे.जी. वांझा, बी.के. पटेल, आर.जी. पाटील सी. गोपाल, एस.एम. पिल्लइ, पी.के. पाटील, एम. मुरलीधर एवं अरविंद कुमार राय

11. **कीटनाशक एवं प्लास्टिक प्रदूषण का असर मछलियों की प्रजनन क्षमता पर** 41

रीता वर्मा एवं ए.के. सिंह

12. **भारत में पाकू मछली : एक दृष्टांत** 43

दीपमाला गुप्ता, शरद चन्द्र श्रीवास्तव, रीता वर्मा, अबूबकर अंसारी एवं ए.के. सिंह

13. **मत्स्य सेल लाइन : एक समीक्षा** 46

अखिलेश कुमार मिश्र, मुकुन्दा गोस्वामी, रविन्द्र कुमार, एन.एस. नागपुरे, अखिलेश दूबे, अमित मिश्र, राज बहादुर, अविनाश रसाल एवं अजय कुमार सिंह

14. **मीठे जल की छोटी देशज मछलियाँ : महत्व, संरक्षण एवं उपयोग** 48

यू.के. सरकार, अखिलेश कुमार मिश्र, प्रवीन अग्निहोत्री, शैलेश कुमार मिश्र एवं अमर पाल

15. **कार्प मछलियों का लवण प्रभावित मृदा एवं जल वाले तालाब में पालन की समस्याएं एवं समाधान–भूमिगत जल निकास प्रणाली प्रक्षेत्र के मद्देनजर** 51

शरद कुमार सिंह, सत्येन्द्र कुमार, एस.के. कामरा एवं गुरबचन सिंह

16. **मछलियों में टीकाकरण** 57

रंजना श्रीवास्तव एवं पीयूष पुनिया

<u>अन्य लेख</u>

17. **''मानव आहार में मछली का महत्व''** 64

विश्वामित्र सिंह बैसवार, रविन्द्र कुमार, अखिलेश कुमार मिश्र, बासदेव कुशवाहा एवं एन.एन. नागपुरे

18. **विश्व की रोचक मछलियाँ–1** 67

परशुराम शुक्ल

19. **विश्व की रोचक मछलियाँ–2 ''अलास्का की काली मछली''** 73

परशुराम शुक्ल

20. **जल में भारी धातुओं से बढ़ती समस्यायें एवं उनका निदान** 76

सुधीर कुमार शुक्ल, संजय कुमार एवं एस.के. अवस्थी

21. **जल प्लावित भूमि (वैटलैंड) विकास के लिए मात्स्यिकी–संतुलित पर्यावरण** 79

पी.के. वार्ष्णेय एवं जे.के. जेना

22. **भारत के पश्चिमी घाट (वेस्टर्न घाट) क्षेत्र की मत्स्य विविधता एवं संरक्षण–एक परिचय** 87

राजेश दयाल, एस.पी. सिंह, ए.के. पाठक, रीता चतुर्वेदी एवं यू.के. सरकार

23. **डिजिटल प्रणाली के आधार पर स्वचालित इलेक्ट्रॉनिक कुंजी का निर्माण एवं मत्स्य प्रजातियों को पहचानने में इनका अनुप्रयोग** 90

अजय कुमार पाठक, राजेश दयाल, एस.पी. सिंह एवं रीता चतुर्वेदी

विविध

24. **विकास गीत** 92

इन्द्रजीत सिंह

25. **अन्तर्मन् की व्यथा** 93

राजीव कुमार सिंह

26. **भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का गीत** 94

उत्तर प्रदेश की राजकीय मछली चिताला की जैविकी तथा संरक्षण आवश्यकता

कैलाश चन्द्र यादव, विकास साहू एवं सुधीर रायज़ादा

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

'नोटोपटेरस चिताला' या चिताला चिताला को हिन्दी तथा स्थानीय भाषा में 'मोय' अथवा चिताला के नाम से जाना जाता है। चिताला मछली हमारी जैव विविधता में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह मछली विश्व में भरतीय महाद्वीप तथा दक्षिण पूर्व एशिया के अनेक देशों में पायी जाती है, जिसमें प्रमुख देश है भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, म्यनमार, नेपाल, थाइलैंण्ड, मलेशिया, सिंगापुर तथा इण्डोनेशिया (डे, 1879; मिश्रा, 1959; मेनन 1974; जयराम 1981)। भारत में चिताला बड़ी नदियों जैसे गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, महानदी, काली नदी, आदि में पाई जाती है। इसके अतिरिक्त यह मछली, झील, जलाशय, तालाब, पोखरों आदि में भी पायी जाती है।

चिताला को उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा वर्ष 2007 में राजकीय मछली घोषित किया गया है। इसकी उपस्थिति यहाँ की विभिन्न नदियों जैसे– गंगा, यमुना, घाघरा, गोमती, चम्बल, सरयू, शारदा; झीलों, जलाशयों और तालाबों में देखी जा सकती है। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से चिताला मछली की उपस्थिति बड़ी तेजी से घट रही है और अब यह विलुप्त प्रायः की श्रेणी में शामिल की जा चुकी है। अतः इसके संरक्षण के लिये ठोस कदम उठाने की आवश्यकता हैं। चिताला मछली मुख्यता साफ नदियों के अधिक आक्सीजन वाले जल क्षेत्रों में पायी जाती है। परन्तु समयानुकूलन द्वारा इस मछली ने अपने आपको जलाशय व तालाबों के जल के अनुरूप भी विकसित कर लिया है। चिताला मछली का आकार प्रायः लम्बा तथा चपटा होता है, जिसके अधर तल पर पाया जाने वाला पंख जिसे अधर पंख भी कहते है लंम्बा और आरी की तरह दिखाई पड़ता है। इसी कारण इस मछली की 'रेजर ब्लेड मछली' भी कहते हैं इसके शरीर पर दोनों तरफ नीले रंग के धब्बे पाये जाते है, जो संख्या में पाँच (5) या उससे अधिक होते है। इन धब्बों और अपनी आरीनुमा आकृति के कारण यह मछली बहुत सुन्दर दिखाई पड़ती है और सजावटी मछली की तरह इसका उपयोग एक्वेरियम में भी किया जाता है। आंकड़ों के अनुसार यह आकार में अधिकतम लम्बाई 122 सेमी. के साथ अधिकतम वजन 14 किग्राम तक प्राप्त कर लेती है।

चिताला मछली में अतिरिक्त वायु श्वासी अंग भी पाये जाते हैं। यह मछली प्रजनन अवस्था को लगभग 3 से 4 वर्ष में प्राप्त कर पाती है, जो कि अन्य मछलियों विशेषकर कार्प मछलियों की अपेक्षा अधिक है। यही कारण है कि चिताला मछली के प्रजनक अपेक्षाकृत देर में तैयार होते हैं।

प्रजनन के लिये तैयार एक प्रौढ़ चिताला मछली की प्रजनन क्षमता अन्य मछलियों की अपेक्षा कम होती है। एक प्रौढ़ मछली में नर तथा मादा जनन अंग शरीर में बाँयी तरफ पाये जाते है इसी कारण के फलस्वरूप चिताला मछली में प्रजनन क्षमता अन्य मछलियों की अपेक्षा काफी कम पायी जाती है। इसमें नर तथा मादा मछली की पहचान इनके जनन पैपिला द्वारा आसानी से की जा सकती है। इसके अतिरिक्त मादा मछली का

अधर भाग परिपक्व होने पर सामान्य से अधिक फूला हुआ दिखाई पड़ता है। इस मछली में गोनेडो सोमैटिक इण्डेक्स नर तथा मादा में क्रमशः 2.8% और 5% शारीरिक वजन के अनुसार प्रौढ़ अवस्था में पाया जाता है।

सिंह और साथियों (1980) के अनुसार एक 8 किग्रा. वजन मछली में अण्डाशय 773 मिमी. लम्बा और 400 ग्राम वजन का होता है। जिसका गोनैडो सोमेटिक इण्डेक्स 17.5 का पाया गया।

चिताला मछली के जनन अंगों में विकास की विभिन्न अवस्थायें विभिन्न माह में निम्न प्रकार पायी गयी है

प्रथम अवस्था – नवम्बर – दिसम्बर

द्वितीय अवस्था – दिसम्बर – जनवरी

तृतीय अवस्था – जनवरी – फरवरी

चतुर्थ अवस्था – मार्च – अप्रैल

पंचम या परिपक्व अवस्था – अप्रैल – मई

प्रजनन अवस्था – जुलाई – अगस्त

चिताला की अण्डजनन क्षमता 3 कि.ग्रा. और 4 कि.ग्रा. वजन की मछलियों में क्रमशः लगभग 12462 और 16200 पायी गयी है (सिंह और साथी 1980)।

प्रजनन के समय मादा मछली लगभग 100 अण्डे 25 सेमी. की जगह पर किसी ठोस आधार पर देती है जिसके ऊपर नर अपना मिल्ट छोड़ता है। इस प्रकार अण्डे निषेचित हो जाते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा लगभग 60 प्रतिशत अंण्डो के निषेचित होने की संम्भावना बनी रहती है। अण्डों का आकार लगभग 4.5 मिमी. का होता है। निषेचित अण्डे 7 से 8 दिन में हैच कर जाते है। हैच किये हुये लार्वा (स्पान) का आकार लगभग 10.23 मिमी. का होता है। स्पान 6 से 7 दिनों तक अपने योक सैक के द्वारा पोषित होता है और योकसैक समाप्त होने के बाद इसको भोजन की आवश्यकता पड़ती है। अतः इन्हें उबाला हुआ अण्डा एवं झींगा पावडर 1:1 के अनुपात में मिलाकर 8% सम्पूर्ण शारीरिक वजन के अनुसार खिलाया जाता है। इसके अतिरिक्त खाने में इन्हें जन्तु प्लवक, जैसे–रोटिफर और ब्रैकियोनस खिलाये जाते है। इस प्रकार का भोजन लगभग एक महीने तक दिया जाता है। चिताला मछली के स्पान जब फ्राई अवस्था के हो जाते है तो ये अपने शिकार को खुद पकड़ने लगते हैं, साथ में बाहर से अतिरिक्त दिया गया खाना भी ग्रहण करते हैं। चिताला के बच्चे अंगुलिकाओं की अवस्था में पहुँचने पर पूर्ण रूप से माँसाहारी प्रवृत्ति के हो जाते है तथा अपना शिकार स्वयं करते है।

चिताला मछली की वृद्धि दर प्रारम्भ में कम रहती है, परन्तु बाद में तीव्र हो जाती है। मछली स्पान से अंगुलिका बनने तक की वृद्धि दर कम होती है परन्तु अंगुलिका अवस्था के बाद इसकी वृद्धि तीव्र हो जाती है। चिताला मछली अपने स्वादिष्ट और पौष्टिक माँस के लिए अधिक पसंद की जाती है। इसके कल्चर की उपयुक्त वैज्ञानिक विधि उपलब्ध न होने के कारण इसकी शत प्रतिशत आवश्यकता आखेट द्वारा प्राकृतिक स्रोतों से पूर्ण की जाती है। वर्तमान में प्राकृतिक स्रोतो में कमी के कारण इसकी बाजार में भी उपलब्धता नित्य प्रति कम होती जा रही है जिसके कारण इसका बाजार में मूल्य काफी अधिक है आज अधिक दोहन के कारण इस प्रजाति पर अपने अस्तित्व को बनाये रखने का खतरा मण्डरा रहा है। चिताला आज विलुप्त होने के कगार

पर खड़ी है। 'राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो', लखनऊ के एक सर्वेक्षण में पाया गया है कि भागीरथी नदी, फरक्का और पश्चिम बंगाल में इसकी 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या पिछले दस वर्षों में समाप्त हो चुकी है जो एक बहुत बड़ी चिन्ता का विषय है।

अतः अब आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रजाति के संरक्षण के लिये तालाबों में पालन प्रारम्भ किया जाये, जिससे खाद्य रूप में इसकी आवश्यकता की पूर्ति की जा सके तथा साथ में खुले जल क्षेत्रों से इसके दोहन पर कुछ समय के लिये रोक लगायी जा सके। पश्चिम बंगाल के कुछ प्रगतिशील किसानों ने प्रेरित प्रजनन द्वारा इसके बीज का उत्पादन प्रारम्भ कर दिया है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि प्रेरित प्रजनन की इस विधि को पूर्णरूपेण सक्षम बनाकर अन्य राज्यों तक पहुँचाया जाये तथा बीज उत्पादन बढ़ाया जाये। चूँकि चिताला एक मांसाहारी मछली है अतः इसके कृत्रिम आहार बनाये जाने की आवश्यकता पर भी शोध अनिवार्य है। प्रेरित प्रजनन तथा कृत्रिम आहार की विधियाँ पूर्ण रूप से विकसित होने के उपरान्त इस मछली के बीज का संचयन खुले जलक्षेत्रों में कर इसके संरक्षण को बढ़ावा दिया जा सकेगा।

मीठे पानी के महाझींगें का जीव–विज्ञान (एक परिचय)

एस.एम. श्रीवास्तव, ए.के. पाण्डेय एवं कुमारी अपराजिता

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

ज्यादातर मीठे–पानी के महाझींगा *(मैक्रोब्रेकियम रोजनबर्गी)* को नदी का महाझींगा या मलेशियन झींगा के नाम से भी जाना जाता है। खाद्य स्रोत के रूप में इस प्रजाति का महत्वपूर्ण स्थान है, व्यवसाय की दृष्टि से इस झींगे की आर्थिक महत्ता हैं।

(1) नामकरण :– ज्यादातर सभी मीठे पानी के महाझींगा को जीनस मैक्रोबेकियम के अन्तर्गत संवर्धित किया गया है, और यह पैलिमोनिडि फैमिली की सबसे बड़ी जीनस है, इसके अन्तर्गत लगभग 200 प्रजातियों को वर्णित किया गया है, जिसमें से सभी कम से कम अपने जीवन का कुछ भाग मीठे–पानी में व्यतीत करते है।

मीठे पानी का *(मैक्रोबेकियम रोजनबर्गी)* उनमें से पहली प्रजाति थी, जिसको 1705 में प्रदर्शित होने के पहले वैज्ञानिक रूप से जाना जाता है, अतीत में मीठे–पानी के झींगे के नामकरण को बहुत भ्रमित किया गया था, जिसमें कैंसर और पैलिमन (Palaemon) जेनेरिक नाम है। पैलिमन कारसिस, पैलिमन डैकयटी और पैलिमन रोजनबर्गी इसके पूर्व नाम है। वर्तमान वैज्ञानिक नाम *मैक्रोबेकियम रोजनबर्गी* (डी मैन 1879) को सार्वभौमिक रूप से इस्तेमाल किया जा रहा है।

(2) वर्गीकरण :– हॉलाकि मीठे पानी के महाझींगे के सटीक नामकरण में किसानों के दृष्टिकोण से थोड़ी प्रासंगिता है, विशेषकर *मैक्रोबेकियम रोजनबर्गी* प्रजाति के संदर्भ में, क्योंकि इसे प्राकृतिक भौगोलिक रूप से कई अन्य क्षेत्र में स्थानांतरित किया गया जहाँ यह स्थापित हो सकता है।

किंगडम	–	एनिमेलिया
संघ	–	आर्थोपोडा
उपसंघ	–	क्रशटेशिया
वर्ग	–	मलैकोस्ट्रेका
ऑर्डर	–	डेकापोडा
फैमिली	–	पैलिमोनिडी
जीनस	–	मैक्रोबेकियम
प्रजाति	–	रोजनबर्गी

(3) वितरण :– पूरे विश्व में मैक्रोबेकियम की लगभग 200 प्रजातियाँ है, जिनमें से 49 प्रजातियां आर्थिक

रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इनमें 27 एशिया और प्रशांत महासागर में पायी जाती हैं, जिनमें से ज्यादातर मीठे जल में पायी जाती है। कुछ प्रजातियाँ नदियों के मुहाने पर लवणीय जल में पायी जाती है। वंशावली वृक्ष (Phylogenetic tree) के अनुसार विश्व स्तर पर मीठे जल के झींगे के वितरण के संबंध में एक रूपता दिखाई गई है।

मैक्रोबेकियम रोजनबर्गी बड़े पैमाने पर मलेशिया, थाईलैण्ड, फिलिपिन्स, भारत, श्रीलंका, भारत प्रशांत क्षेत्र में बंगलादेश, म्यानमार, इण्डोनेशिया और वियतनाम के उष्णकटिवंधीय क्षेत्रों के पानी में पाया जाता है। ये तालाब, नदी, झील, नाले, नहरों और नदी के मुहाने पर आमतौर पर पाए जाते है। बहुत सी प्रजातियाँ अपना प्रारंभिक जीवन लवणीय जल में व्यतीत करते है और समुद्र के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़े हुए है। कुछ प्रजातियां अपना जीवन चक्र मीठे जल में व्यतीत करती हैं, समुद्र से लगभग 200 कि.मी. की दूरी तक ये झींगे नदियों के मुहाने पे आते है और इसके पश्चात झीलों और धान के खेतों में प्रवेश करते है, इस तरह का प्रयास सिर्फ *मैक्रोबेकियम रोजनबर्गी* में ही नहीं बल्कि अन्य प्रजातियों में भी देखा गया है। *मैक्रोबेकियम रोजनबर्गी* के विकास के लिए उपयुक्त तापमान तथा पी.एच. क्रमशः 29–31°C और 7.0-8.5 माना गया है।

4. **जीवन चक्र** :– अन्य क्रशटेशियन की तरह मीठे–पानी के महाझींगे का बाहरी–कवच कठोर होता है और अपने विकास के लिए यह पुरानी कवच को हटाकर नई कवच ग्रहण करता है। इस सामायिक कवच विच्छेदन के कारण झींगे का विकास लगातार न होके एक–एक करके होता है। जिसके परिणामस्वरूप इसका विकास चार चरणों में पूरा होता है, अंडा, लार्वा, किशोर तथा वयस्क। कवच विच्छेदन तथा आंतरिक कवच विच्छेदन की संख्या तथा अवधि सुनिश्चित नहीं होती है और यह ज्यादातर पर्यावरण जैसे की तापमान तथा पर्याप्त मात्रा में भोजन–आपूर्ति पर निर्भर करती है।

प्राकृतिक पर्यावरण में मैक्रोबेकियम रोजनबर्गी पूरे वर्ष संभोग करते है, परंतु कुछ वातावरणीय कारकों की वजह से यह कुछ निश्चित समय में शिखर संभोग करते है, मादा–झींगा में कवच विच्छेदन के पश्चात जननअंग परिपक्व हो जाता है तब ये कठोर आवरण वाले नर–झींगे के साथ संभोग करती है, संभोग के दौरान नर–झींगा, मादा झींगे के जननअंग में एक चिपचिपा पदार्थ (spermatophore) (स्परमैटोफोर) को स्थानांतरित करता है और मादा झींगा संभोग के कुछ दिनों तक इन अण्डों को एक चिपचिपे धागे द्वारा पैरों के बीच में एकत्रित रखती है, और कुछ दिन के बाद इन्हें वो अपने शरीर से अलग करती है, अण्डों की संख्या मादा झींगे के आकार पर निर्भर करती है। 50-100 g तक झीगें 50,000-1,00,000 अण्डों को ढोते है।

मैक्रोबैकियम के अण्डे थोड़े अण्डाकार और 0.6–0.7 mm की लम्बी अक्ष वाले होते है, तथा भ्रूणीय अवस्था के पहले चमकीले नारंगी रंग के होते है, बाद ये परिपक्व हो, ये भूरे–काले रंग के हो जाते है, जब भ्रूण भोजन लेना शुरू करता है, तो इनके रंग में परिवर्तन होने लगता है। अण्डे 21 दिन तक इंक्यूबेट होते है और फिर हैचिंग होती है, लार्वा रात में अण्डे से निकलते है, और पैर सदृश अंगों (प्लीयोपाड्स) की सहायता से तेजी से चलते है वो सामान्य तरीके से अपने सिर को नीचे की तरफ करके धरातल के संपर्क में रहते हुए तैरते है। लार्वा को इस

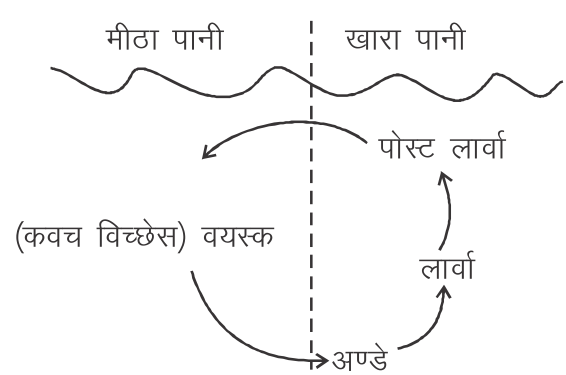

मीठे पानी के महाझींगे का जीवन चक्र

समय जीवन व्यतीत करने के लिए लवणीय जल की आवश्यकता होती है। अगर लार्वा की हैचिंग मीठे पानी में होती है और उसे दो या तीन (2–3) दिन के अंदर खारे–पानी में न डाला जाए तो उसकी मृत्यु हो जाती है। लगभग 26 दिनों के बादा लार्वा, पोस्टलार्वा वाली अवस्था में परिवर्तित होता है। बहुत से वैज्ञानिकों ने यह स्वीकार किया है कि लार्वा कायापलट के पहले 11 अलग–अलग चरणों को पूरा करते है। लार्वा की लम्बाई लगभग 2 मि.मी. तक होती है, नया कायापलट हुए पोस्ट लार्वा की लम्बाई 7.7 मी.मी. लम्बी हो जाती है, पास्टलार्वा की ये विशेषता होती है कि ये तैरते और चलते वयस्क की तरह ही है ये ज्यादातर पारदर्शी होते है, और उनका सिर का क्षेत्र हल्का नारंगी गुलाबी होता है। इसके बाद ये वयस्क अवस्था में परिवर्तित होते है।

अपने उच्च पोषक गुणवत्ता की विशेषता के कारण, मीठे पानी के महाझींगे का पालन हमारे मत्स्यपालकों के लिए जीविका एवं व्यवसाय का प्रमुख स्रोत बन सकता है।

एपिजूटिक अल्सरेटिव सिन्ड्रोम

संध्या तिवारी

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

मछलियाँ पिछले कई सालों से एक घातक रोग से प्रभावित हो रही हैं, इसे लाल घाव की बीमारी कहतें हैं, यह बीमारी एपिजूटिक अल्सरेटिव सिन्ड्रोम के नाम से भी जानी जाती हैं। यह बीमारी सर्वप्रथम 1971 में जापान में अस्तित्व में आयी, तत्पश्चात् 1972 में आस्ट्रेलिया में इस बीमारी की पहचान की गयी, अस्सी के दशक के उत्तरार्द्ध में देश के विभिन्न भागों में फैली यह बीमारी मत्स्य पालकों के लिए आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुई। यह न सिर्फ मत्स्य पालक और कृषक के लिए बल्कि सामान्य जनता एवं प्रशासन के लिए एक महान चिन्ता का विषय बनी हुई हैं। भारत में सर्वप्रथम इसे 1988 से देखा जा रहा हैं, भारत के पूर्वी व पूर्वोत्तर राज्यों के तालाबों, नदियों व नहरो में पायी जाने वाली मछलियों में यह रोग सर्वप्रथम देखा गया। त्रिपुरा राज्य से प्रारम्भ होकर यह आसाम, मेघालय और पश्चिम बंगाल में व्यापक रूप से फैलने के बाद 1989 में यह उड़ीसा में तथा 1990 में बिहार व आन्ध्र प्रदेश में प्रवेश किया। 1990–91 में ही इसे महाराष्ट्र व मध्य प्रदेश में भी देखा गया, 1992 में केरला के खारे पानी के जलाशयों में और आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा हरियाणा के मीठे जल की मछलियाँ इस रोग के चपेट में आ गयी। उड़ीसा के खारे पानी की मछलियों में (पराद्वीप तथा चिलका झील) साथ ही पाँडिचेरी में 1992 में तथा गोवा में 1993 में इस रोग के प्रविष्ट होने की सूचना प्राप्त की गयी। जापान से प्रारम्भ यह मत्स्य रोग आज सारे दक्षिण एशिाई व पैसीफिक जलक्षेत्रों में महामारी के रूप में फैल गया हैं। सभी राज्यों के जल क्षेत्र आज इसकी गिरफ्त में आ चुके हैं। अब तक यह 94 मछलियों की प्रजातियों पर देखा जा चुका हैं, यह रोग सर्वप्रथम तलहटी पर रहने वाली प्रजातियों जैसे– मुरेल, कैट तथा खरपतवार खाने वाली वीड मछलियों को प्रभावित करता हैं, तत्पश्चात् भारतीय मेजर कार्प को रोगग्रसित कर देता हैं, जिससे मत्स्यकृषक को भारी हानि का सामना करना पड़ता है। यह रोग संवर्धनकारी मछलियों के साथ–साथ जंगली तथा असंवर्धनकारी मछलियों को भी व्यापक रूप से प्रभावित करता हैं।

रोग के प्रारम्भ में मछली के शरीर पर लाल रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, कार्प मछलियों में यह घाव स्केल के नीचे से प्रारम्भ होते हैं, प्रारम्भिक लक्षणों में मछली अनियमित गति के साथ या कभी–कभी उत्तेजना के साथ जल की सतह के नीचे तैरती रहती हैं, रोग तीव्र होने पर घाव शरीर के काफी हिस्सो जैसे– शरीर सतह, मुख, क्लो–ढापन अथवा उच्च पंख आदि पर रक्तरंजित घाव फैल जाते हैं, बाद में यही घाव बड़े–बड़े लाल अथवा भूरे रंग के हो जते हैं, तथा इसमें मवाद पड़ जाता हैं, जिनसे रक्त निकलना प्रारम्भ हो जाता हैं, धीरे–धीरे त्वचा तथा मांसपेशियां सड़कर शरीर से अलग होने लगती है, और मछलियों की मृत्यु हो जाती हैं। यह रोग घाव वाले स्थान पर त्वचा की ऊपरी सतह को पूर्णतया समाप्त करने के बाद त्वचा की निचली सतह डर्मिस और हाइपोडर्मिस को भी रोगग्रस्त कर देता है, यह ऊतकीय स्तर पर अध्ययन करके ग्रेन्यूलोमेटस की उपस्थिति के द्वारा दर्शाया जा सकता है। प्रारम्भ में इस रोग के कारणों का ठीक से पता नहीं लग पाया था। विभिन्न अध्ययनों के अनुसार यह प्रतिपादित हुआ कि शायद एक से अधिक परजीवियों के कारण फैलता हैं, अति संक्रमित मछली के विश्लेषण में कई प्रकार के रोगजनको जैसे– जीवाणु, विषाणु, फफूँद इत्यादि का सम्मिलित संक्रमण देखा गया है। लेकिन अब यह पूर्णतया सिद्ध हो चुका हैं कि यह रोग

प्रमुखता एक कवक एफेनोमाइसिस इनवेडन्स के द्वारा उत्पन्न होता है। विभिन्न प्रयोगों से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि विभिन्न प्रकार के जैविक कारक जैसे– जीवाणु, विषाणु, कवक, प्रोटोजोन तथा अजैविक कारक कम तापमान, कम डी.ओ., कम पी.एच. आदि कारक इस बीमारी को उत्पन्न करने में सहायक होते हैं, बरसात के बाद जाड़े में कम तापमान पर मछलियों के शरीर का प्रतिरक्षा तंत्र कमजोर पड़ जाता है, और वह आसानी से इस रोग के गिरफ्त में आ जाती हैं।

उपचार– अभी तक कोई भी सम्पूर्ण उपचार उपलब्ध नहीं हैं।

रोकथाम– सर्वप्रथम इस बीमारी की रोकथाम करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखना चाहिए–

- तालाब का निर्माण करते समय तालाब को पूर्णतया सुखा लेना चाहिए, तत्पश्चात् उसमें चूना का छिड़काव करना चाहिए।
- प्रयोग में आने वाले सारे यन्त्र रोगरहित (कीटाणु रहित) होने चाहिए।
- मछलियों में यह बीमारी पुनः स्थापित न हो इसके लिए अगर सम्भव हो तो नयी मछलियों को ऐसी जगह से लेना चाहिए जहाँ यह रोग पहले न हुआ हो, इसके अतिरिक्त मछलियों को तालाब में डालने से पूर्व 1 प्रतिशत नमक (सोडियम क्लोराइड) के घोल में डुबो कर तालाब में डालना चाहिए।
- अगर सम्भव हो तो जल स्रोत संदैव भूमिगत होना चाहिए।
- मछलियों को संदैव सीमित मात्रा में रखना चाहिए, अतिरिक्त मात्रा होने से बीमारी होने के अवसर बढ़ जाते हैं।
- तालाब के अजैविक कारक जैसे– कम पी.एच. कम डी.ओ. रोग को बढ़ाने में मदद करते हैं, अतः यह कारक नियन्त्रित होने चाहिए।
- तालाब में काम करने वाले मत्स्य पालक अथवा मत्स्य कृषक के हाथ पैर तथा उनके जूते विभिन्न प्रकार के रोगाणुओं से मुक्त होने चाहिए।
- यह एक अति घातक रोग है, इसलिए रोग का उपचार अगर जल्दी नहीं किया जाता तो कुछ ही समय में यह पूरे पोखरों की मछलियों को संक्रमित कर देता है। अति संक्रमित मछलियाँ तुरन्त ही मरने लगती हैं, इसलिए रोग का पता चलते ही तालाब में 300 कि.ग्रा. चूना/हे.मी. की दर से 3 बार में हर सात दिन के बाद देना चाहिए। अभी तक उपयोग में लाये गये सभी रसायनों या औषधियों में यह उपचार काफी हद तक असरदायक साबित हुआ हैं।
- सीफा (भुवनेश्वर) नामक संस्थान ने उक्त रोग के उपचार हेतु एक कम खर्चीली औषधि तैयार की है, इसका व्यापारिक नाम *''सीफेक्स''* (सी.आर.एफ.ए.एक्स.) दिया गया है। यद्यपि इस औषधि का पानी की गुणवत्ता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता हैं, फिर भी यह सुझाव दिया जाता है, कि प्रायः 24 घन्टे तक तालाब के पानी का प्रयोग घरेलू कार्य हेतु नहीं करना चाहिए। पालतू जानवरों अथवा मवेशियों को पूरे 24 घंटों तक उस तालाब का पानी नहीं पीने देना चाहिए। केवल एक बार के प्रयोग से ही 7–10 दिन के अन्दर मछलियाँ स्वस्थ होने लगती हैं।
- 1 ली. दवा को 100 ली. पानी में घोल बनाकर तालाबों में डालने से यह रोग निरोधक के रूप में भी काम करता हैं।
- गर्म चूना, कैल्शियम आक्साइड 100–600 कि.ग्रा./हे. की दर से पी.एच. देखकर तालाब में तीन खुराकों में एक दिन छोड़कर डालें।
- ब्लीचिंग पाउडर 1 मिग्रा./ली. मछलियों के शरीर पर या 5–10 कि.ग्रा./हे. तालाब में डालें।
- 1 ली./हे. की दर से सीफैक्स दवा तालाब में डालें।

''जल जीव–पालन, विषानुवांशिकता एवं जैव तकनीकी''

एन.एस. नागपुरे, मोहित तिवारी, रविन्द्र कुमार, वासदेव कुशवाहा एवं महेन्द्र सिंह

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

विषानुवांशिकता आधुनिक शोध का वह क्षेत्र है जिसमें विभिन्न आनुवंशिक यंत्रों यथा सप्रेसन सब्ट्रेक्टिव हाइब्रिडाइजेशन, सी.डी.एन.ए. निर्माण, डी.एन.ए. माइक्रोऐरे, गुणवत्तापरक पोलीमरेज श्रृंखला अभिक्रिया का अनुप्रयोग जीव या समुदाय पर विषाक्त पदार्थों की क्रिया एवं अभिक्रिया मार्ग के अध्ययन हेतु किया जाता है। सालमोनिड मछलियाँ जैसे 'रेनबो ट्राउट' विषानुवांशिकता अध्ययन हेतु एक उपयुक्त नमूना हैं। सालमोनिड मछलियाँ विश्व की जल जीव–पालन उद्योग में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। विश्वव्यापी प्राकृतिक स्वतः प्रजनन क्षमता के कारण यह मछलियाँ पर्यावरण–विषानुवंशिकी शोध अध्ययन हेतु एक आदर्श नमूने की भाँति प्रयोग की जाती हैं। जो साथ ही प्रयोगशालाओं एवं वास्तविक जल–क्षेत्र के बीच की दूरी को भी कम करती है।

वर्तमान समय में सालमोनिड मछलियों में लगभग हजार जीन संख्या, जो कि पुराने शोधों पर आधारित है, के माइक्रोऐरे उपलब्ध हैं। जो कि विभिन्न प्रकार के विषाक्त पदार्थों के कारण प्रभावित होने वाले जीनों को सूचित करते हैं। साथ ही इन विष पदार्थों की संपूर्ण क्रियाविधि को भी उद्घाटित करते हैं। फिर भी उपलब्ध विषाक्ता कारक जीन सूची सभी प्रकार के विष पदार्थों को नामांकित करने में सक्षम नहीं है। अतः इस हेतु अन्य प्रकार के आनुवांशिक यंत्रों यथा निश्चात्मक एस.एस.एच. संग्रह (टारगेटिड एस.एस.एच. लाइब्रेरी) एवं ई.एस.टी. डाटा–बेस जो कि विषाक्ता कारक जीन संख्या सूचित करे, की आवश्यकता है।

माइक्रोऐरे–आधारित शोध परियोजनाओं का जल जीव–पालन में एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम मत्स्य उत्पादन संबंधित कारकों जैसे कि वृद्धि क्षमता, तापमान अनुकूलन सामान्जस्यता, मत्स्याखेट तनाव मूलक जीन प्रदर्शन, रोग–कारकों के प्रति प्रतिरोधकता एवं वैक्सीन निर्माण में है। उदाहरण के तौर पर एक शोध परियोजना यह भी बनायी जा सकती है कि, एक प्रजनन समूह में वह कौन–कौन से कारक हैं जो कि मत्स्योत्पादकता वृद्धि में एक तरह से आणविक जैव सूचकों की भाँति कार्य कर सकें। यह कारक सूचक आधारित चुनाव (मार्कर असिस्टेड सिलेक्सन) की भाँति प्रयोग किये जा सकते हैं।

विशिष्ट कारकों के निर्धारण की परंपरागत विधियों में देशीय प्रजाति प्रजनन एवं क्यू.टी.एल. अध्ययन प्रमुख स्थान रखता है। अनेक अध्ययनों में मत्सयोत्पादन में सहायक कारकों यथा तापमान सहनशीलता, रोग प्रतिरोधिकता इत्यादि के लिये उत्तरदायी क्यू.टी.एल. के निर्धारण हेतु सालमन मछली के आनुवांशिक मानचित्र का प्रयोग किया गया है। फिर भी सालमन के आनुवांशिक मानचित्र में सूचकों की कमी के कारण विशिष्ट जीनों के निर्धारण में अभी भी प्रयासों की आवश्यकता है। फिर भी यह संभव है कि विश्वव्यापी जीन प्रदर्शन शोधों के कारण निकट भविष्य में हम उन जीनों का पता लगाने में सक्षम हो सकें, जो कि विभिन्न प्रकार के कारकों के आनुवांशिक प्रवाह में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

डी.एन.ए. माइक्रोऐरे को विशिष्टतामूलक जीनों के निर्धारण हेतु सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। एक अध्ययन में स्तनधारी जीवों में उच्च तनाव हेतु जीनों के निर्धारण में चूहे के माइक्रोऐरे चिप का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन द्वारा यह पता लगाया गया कि कौन से जीन एक समूह में अपना प्रदर्शन करते हैं, जो कि मानसिक तनाव के समय क्रियाशील होते हैं। उदाहरण स्वरूप चावल की माइक्रोऐरे पहिका द्वारा एक समूह के 15 जीनों का निर्धारण किया गया जो कि पौधों में शीत वातावरण, पानी की कमी, अत्यधिक क्षारीय मृदा एवं एब्सीसिक अम्ल उपचार हेतु प्रयोग किये जा सकते हैं।

आनुवांशिक यंत्रों के प्रयोग के एक अन्य आयाम के रूप में मत्स्य रोगोपचार एवं रोग कारकों का निर्धारण आता है। रोगकारक एवं ग्राही की प्रतिरोधकता तंत्र के जीनों का निर्धारण करने हेतु ट्रांसक्रिप्टोमिक आयाम का प्रयोग किया जा सकता है। माइक्रोऐरे के प्रयोग द्वारा यह पता लगाया जा सकता है कि किसी भी रोग कारक जीवाणु अथवा विषाक्त पदार्थ के कारण मत्स्य प्रजाति में कौन–कौन सी आण्विक क्रियायें संपादित हो रही हैं। उदाहरणतया विश्व–पटल पर सालमन मछली की उत्पादकता बढ़ाने हेतु तथा इसके प्रतियोगितात्मक मूल्यन हेतु समुद्री पिंजड़ा पालन तकनीकी का प्रयोग अत्यावश्यक है। परंतु साथ ही इस विधि के प्रयोग से बीमारी फैलने की प्रबल आशंका होती है। प्रत्येक वर्ष लाखों की संख्या में प्राकृतिक जल स्रोतों से उत्पादित तथा पालन की हुई सालमन मछली बढ़ती हुई बैक्टीरिया जनित तथा विषाणु जनित बीमारियों जैसे कि पिस्सीरिकेटसिया सालमोनिस एवं घातक हीमेटोपोइटिक नेक्रोसिस विषाणु के कारण मर जाती हैं। इस समस्या के समाधान हेतु सालमन डी.एन.ए. माइक्रोऐरे चिप का ग्राही तथा रोगाणु संबंध का अध्ययन करने हेतु सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। उदाहरण स्वरूप अटलांटिक सालमन मछली में पिस्सीरिकेटसिया सालमोनिस नामक विषाणु के लिये वृक्क में उत्तरदायी जीनों का पता लगाने में जी.आर.ए.एस.पी. 3.5 के.सी.डी.एन.ए. नामक माइक्रोऐरे चिप का प्रयोग किया जाता है।

जीन प्रदर्शन द्वारा अभिलक्षणों के अध्ययनों हेतु अन्य विधियों में जीन प्रदर्शन का क्रमागत परीक्षण एवं सामूहिक समानांतर हस्ताक्षर क्रम अध्ययन विधि (एम.पी.एस.एस.) इत्यादि है। उपरोक्त सभी प्रकार के आण्विक अध्ययन के यंत्रों द्वारा मत्स्य समुदाय के संरक्षण एवं उनकी अभिवृद्धि हेतु उपाय किये जा सकते हैं। जिससे कि पारिस्थितिक तंत्र में सामन्जस्य स्थापित रह सके। साथ ही इन आधुनिक यंत्रों के प्रयोग द्वारा मत्स्य संवर्धन हेतु नयी नीतियों का निर्धारण किया जा सकता है, ताकि सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश में यह विधा अपना स्थान सुदृढ़ कर सके।

''विषानुवांशिकी एवं मत्स्य पालन : एक अध्ययन''

मोहित तिवारी एवं एन.एस. नागपुरे

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

मत्स्य संपदा मानव सभ्यता को प्रकृति की अनमोल देन है। मीन एवं मानव का संबंध चिरकालीन ग्रंथों में भी वर्णित है। मनुष्य जीवन में मत्स्य संपदा का अनेकानेक पदों पर महत्व है। वर्तमान समय में यह जैव संपदा मनुष्य के हस्तक्षेप के कारण अनेक पहलुओं से अपने अस्तित्व को बचाने हेतु संघर्षरत् है। मानव हस्तक्षेप का एक मुख्य अवयव है– प्रदूषण, जो कि आज के समय में मनुष्य की महात्वाकाँक्षांओं की वेल नित्य प्रति बढ़ने के कारण एक विकराल रूप धारण कर चुका है। विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों में से जल प्रदूषक ही वह अवयव हैं, जो कि हमारे जल तंत्र को प्रभावित कर रहे हैं। जन प्रदूषकों में मुख्यतया अनेक प्रकार के कीटनाशक यथा मैलाथियान, साइपरमेथ्रिन, एण्डोसल्फान, डी.डी.टी., 2, 4–D, ऐट्राजीन, ऐलाक्लोर; भारी धातुयें यथा कैडमियम, मरकरी, क्रोमियम, जिंक, सीसा इत्यादि, एवं अन्य मानव जनित औद्योगिक अपशिष्ट हैं। यह विभिन्न प्रकार के प्रदूषक पारिस्थितिक तंत्र में प्रत्येक स्तर पर अपना घातक प्रभाव प्रदर्शित करते हैं।

किसी भी विषाक्त पदार्थ का हमारे अथवा किसी भी जीव के ऊपर मुख्यतया दो तरीके से प्रभाव पड़ता है– प्राथमिक एवं द्वितीयक। प्राथमिक स्तर के प्रभावों के अंतर्गत वे घटनायें आती हैं जिनकी लंबे समय तक निरंतरता के कारण द्वितीयक स्तर के प्रभाव परिलक्षित होते हैं। यह प्रभाव दृष्टिगोचर तो होते हैं परंतु अपने उन्मूलन की संभावनायें बहुत ही कम रखते हैं। यथा–शारीरिक विकार, बीमारियाँ जैसे कैंसर, गलन, इत्यादि। इन बीमारियों के हमें दिखाई देने से पहले अनेकानेक अवयव होते हैं जो कि इनके मूल में होते हैं। किसी भी विष पदार्थ का प्रभाव सर्वप्रथम हमारे जीवद्रव्य पर प्रभाव पड़ता है। जिसमें प्रमुखतया यह आनुवांशिक द्रव्यों (डी.एन.ए. एवं आर.एन.ए.) को प्रभावित करता है। डी.एन.ए. पर किसी भी विष पदार्थ के कारण दो तरह से प्रभाव पड़ता है। एक तो वह जिसके कारण इसमें क्षरण होता है (डी.एन.ए.–क्षरण) और दूसरा इस क्षरण के कारण आनुवंशिक अनुवाद में परिवर्तन (आर.एन.ए.–विकार)। डी.एन.ए. क्षरण को हम अनेक विधियों (यंत्रों) से जान सकते हैं। जिसमें प्रमुख हैं– डी.एन.ए. पुच्छल परीक्षण, सूक्ष्म केंद्रक परीक्षण, गुणसूत्र–विकार परीक्षण इत्यादि। इन परीक्षणों के द्वारा हम यह पता लगा सकते हैं कि अमुक विषाक्तता हमारे पारिस्थितिक तंत्र में व्याप्त है और यह हमारे जैव तंत्र को प्रभावित कर रही है।

जब किसी विष पदार्थ की पारिस्थितिक तंत्र में एक लंबे समय तक उपस्थिति दर्ज की जाती है तो इसके प्रभाव बड़े ही अनुत्क्रमणीय होते हैं। जो कि अनुवंशिक अनुवाद के समय घातक प्रोटीन एवं रसायनों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं। यह घातक रसायन ही द्वितीयक स्तर के प्रभावों के मूल में होते हैं।

विषानुवांशिकी के अंतर्गत वे सभी घटनायें आती हैं जिनके द्वारा हम विष पदार्थों एवं अन्य हानिकारक पदार्थों के हमारे आनुवंशिक तत्वों पर प्रभाव का अध्ययन कर सकते हैं। इस विधा के द्वारा हम अपनी मत्स्य संपदा के जननद्रव्य को विषाक्तता से बचाकर उसे संरक्षित कर सकते हैं। इसी विधा का अन्य अभिनव पहलू हैं 'टोक्सिकोजीनोमिक्स'। जिसमें हम अमुक विष पदार्थ के कारण जीन एवं आर.एन.ए. पर पड़ने वाले प्रभाव को जान सकते हैं। इन अवयवों के द्वारा हम विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों के लिए जैव–सूचकों का भी निर्माण

कर सकते हैं। जैसे कि मिटैलोयायोनीन एक जीन है जो कि भारी धातु की उपस्थिति को प्रदर्शित करता है, सी.वाई.पी. एक पॉलीसाइक्लिक सुंगधित हाइड्रोकार्बन की उपस्थिति दर्शाता है, एच.एस.पी. एक तनाव प्रोटीन है जो कि अनेक प्रकार के प्रदूषकों की एवं अन्य कारकों यथा तापमान, पी.एच., ऑक्सीजन की मात्रा, विकिरणों इत्यादि को प्रदर्शित करता है, आदि।

सार स्वरूप यह कहा जा सकता है कि विषानुवांशिकी के द्वारा हम अपनी अमूल्य मत्स्य जैव संपदा को प्रदूषकों एवं अन्य वातावरणीय कारकों से बचाने हेतु विभिन्न परीक्षणों के द्वारा उनकी उपस्थिति का पता लगा सकते हैं तथा यथासमय उनके उन्मूलन द्वारा हम मत्स्य संपदा को अनुत्क्रमणीय दुष्प्रभावों से बचा सकते हैं। ताकि जैव पारिस्थितिकीय तंत्र के विभिन्न घटकों में सामान्यजस्य स्थापित रह सके।

रंगीन मछली पालन – एक कुटीर उद्योग

संजय कुमार सिंह, पी.के. वार्ष्णेय एवं ए.के. यादव

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

एक्वेरियम मछली व्यवसाय राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही स्तर पर तेजी से विकसित हो रहा है। भारत में सजावटी मछलियों के अनुचित उपयोग से उनके आवास और उनकी प्रजातियां खतरे में पड़ गई है। इसलिए उनके प्राकृतिक आवास पर दबाव कम करना चाहिए और स्वच्छ जल की रंगीन मछलियों के संरक्षण को महत्व देते हुए उनके विशाल महत्व को समझना चाहिए। दूसरी ओर कई स्थनीय प्रजातियां या तो खोजी नहीं गई या उनकी विषेशताओं के बारे में ज्ञान नहीं है।

राष्ट्रीय महत्व

भारत में बिकने वाली अधिकतर रंगीन मछलियां विदेशी हैं। पश्चिमी तट पर इन मछलियों की अनेक प्रजातियां जैसे बार्ब, रसबोरास, किलफिश, कैटफिश, कैटोपरा, हिल ट्राउट और डेनियस पाई जाती है, जोकि सजावटी मछलियों के व्यापार के लिये आदर्श है। इनके शरीर पर कई प्रकार की चौड़ी धारियां, छल्ला, धब्बा और रंगीन पंखों के साथ ये असाधारण सुन्दर दिखती है। सजावटी मछलियों के व्यवसाय के लिये भारत का पश्चिमी तट विशिष्ट परिक्षेत्र व सोने की खान के समान है, किन्तु निश्चित प्रयत्न न होने के कारण इस संसाधन के लिये सही बाजार की उपलब्धता अभी बहुत दूर प्रतीत होती है। इस सेक्टर के खराब प्रदर्शन का मुख्य कारण प्राकृतिक जलीय प्रजातियों की वैज्ञानिक जानकारी का अभाव होना है। आज भारत सजावटी मछलियों के व्यापार में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय के स्तर पर विकसित हो रहा है। अब भारत में विदेशी सजावटी मछलियों का व्यापारिक प्रवेश भी संभव हो गया है जोकि पिछली शताब्दी के शुरूआत तक केवल मनोरंजन के उद्देश्य से ही आती थीं। पिछले आखिरी कुछ दशको से सजावटी मछलियों के अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारत भी अचानक तेजी से उभर गया है। अतः समय आ गया है कि उभरते उद्योगो को अपनी सम्पूर्ण शक्ति से अज्ञात रंगीन मछलियों को खोजने की चुनौती का सामना करना चाहिए। दूसरी ओर कुछ देशी प्रजातियों के खत्म होने का कारण अधिक दोहन व दूसरे अन्य कारण हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय महत्व

आज संसार में रंगीन मछलियों को रखना एक लोकप्रिय प्रचलन हो गया है। एक अनुमान के अनुसार अकेले जापान में, 120 मिलियन जनसंख्या में लगभग 1.2 मिलियन व्यक्ति एक्वेरियम रखते हैं। मछलीघर व्यवसाय के लिये अमेरीका में एक बहुत बड़ा बाजार है जहां जनसंख्या की लगभग 8 प्रतिशत आबादी मछलीघर रखती है। यूनाइटेड गणराज्य और हॉलैण्ड में भी लोग मछलीघर के शौकीन हैं।

वैश्विक स्तर पर रंगीन मछलियों का व्यापार लगभग 500 मिलियन अमेरीकी डॉलर के करीब है। अकेला सिंगापुर 40–50 मिलियन अमेरीकी डॉलर की रंगीन मछलियों के निर्यात में वैश्विक बाजार का 23.3 प्रतिशत सहयोगी है। दूसरी ओर होंग कोंग (7.6 प्रतिशत), थाइलैंड (7 प्रतिशत), इण्डोनेशिया (6.9 प्रतिशत), फिलिपिंस (5.1 प्रतिशत), मलेशिया (3.3 प्रतिशत), जापान (2.5 प्रतिशत) और दूसरे देश (42.9 प्रतिशत) भी निर्यातक है।

भारत का रंगीन मछलियों के व्यापार में मात्र 0.1 मिलियन अमेरीकी डॉलर का हिस्सा है। एफ. ए. ओ. के अनुसार, वैश्विक स्तर पर रंगीन मछलियों का व्यवसाय 350–400 मिलियन है जोकि विदेशी मछलियों को छोड़कर और देशी रंगीन मछलियों की प्रजाति को 65 प्रतिशत तक बढ़ाना है। रंगीन मछलियों की मांग बढ़ती रहेगी और हमारे धनी संसाधन होने के बावजूद भी विदेशी रंगीन मछलियों का प्रवेश जारी रखेंगे। इसलिये, देशी रंगीन मछलियों की खोज बहुत जरूरी है।

आज रंगीन एक्वेरियम मछलियों का व्यवसाय एक कुटीर उद्योग के रुप में उभर कर आ रहा है। इसके प्रोत्साहन एवं ज्ञानवर्धन हेतु **राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो** में एक राष्ट्रीय स्तर के **''गंगा एक्वेरियम''** की स्थापना की गई है, एवं संस्थान भारतीय मूल की सुन्दर प्रजातियों के प्रजनन पर भी कार्यरत् है।

प्रमुख रंगीन मछलियों की प्रजातियां

ऐसा अनुमान है कि रंगीन मछलियों को पालने की प्रथा सैकड़ो वर्ष पूर्व चीन देश में प्रारम्भ हुई। सत्रहवीं सदी में रंगीन मछलियों के रूप में गोल्ड फिश का पदार्पण हुआ। सन् 1854–1862 के मध्य इंग्लैण्ड एवं स्काटलैण्ड में सजावटी मछलियां काफी प्रचलित हो गई। इसी दौरान इंग्लैण्ड में वर्ष 1953 में प्रथम बड़े आकार के एक्वारियम हाऊस का निर्माण हुआ। आज रंगीन मछलियों को पालने का शौक विश्व के लगभग सभी देशों में उच्च स्तर पर पहुँच गया है।

(अ) भारतीय मूल की मछलियां

भारतीय मूल की प्रमुख मछलियां है– इंडियन ग्लास फिश *(एम्बेसिस लाला, ए. नामा, ए. रान्गा)*, क्लाईम्बिंग पर्च *(एनाबास टैस्टूडिनियस)*, पैन्चैक्स (*एफ्लोकाइलस लिनियेटस*), रोजी बार्ब (*पुन्टियस कौनकोनियस)*, गोल्डन डुआर्फ बार्ब (*पुन्टियस गैलियस*), टू–स्पौट बार्ब (*पुन्टियस टिक्टो*), जेब्रा डैनियो *(ब्रेकिडैनियो रैरियो)*, जाइंट गोरामी *(कोलीसा फैसियेटस)*, वन–स्पौट बार्ब *(पुन्टियस टैरियो)*, ब्रेकिडैनियो डिवैरियो, हनी ड्रार्फ गोरामी *(कोलीसा चूना)*, डुआर्फ गोरामी (*कोलीसा लैलिया*), जाइंट डैनियो (*डैनियो मैलावारिकस*), ओरेन्ज क्रोमीडी *(ऐट्रोप्लस मैकुलेटस)*, स्टाइप्ड क्रोमीडी *(ऐट्राप्लस सुराटैन्सिस)*, किसिंग गोरामी (*हैलोस्टोमा टैमिन्की*), सिंगी (*हैटरोपन्युसटिस फौसिलिस*), स्लैन्डर रसबोरा (*रसबोरा डैनिकोनियस*), स्पौटिड स्कैट (*स्कैटोफेगस आर्गस*), ग्रीन पफर (*टेट्राडॉन फ्लुवियेटिलिस*), थिरी–स्पौट गोरामी (*ट्राइकोगैस्टर ट्राइकोपटैरस*)।

(ब) विदेशी मूल की प्रमुख मछलियां

विदेशी मूल की प्रचलित मछलियां है– स्वर्डटेल (*झिफोफोरस हिलेरी*), प्लेटी (*झिफोफोरस मैकुलेटस*), वैरीगेटिड प्लैटी (*झिफोफोरस वैरियेटस*), डिसकस (*सिमफाइसोडान डिसकस*), एन्जिल फिश (*टैरोफाइलम स्कैलेयर*), गोल्ड फिश (*कैरेषियस कैरेशियस*), मार्बिल मोली (*मौलिन्सिया सफिनौप्स*), नियोन ट्रेटा (*हाइफैसोब्रिकोन इनैसी*), गप्पी (*लैबिसटिस रैटिक्युलेटस*), रेडटेल ब्लैक शार्क (*लेबियो बाइकलर*), क्लाउन लोच (*बोटिया मैकराकैन्था*), जेब्राडैनियो (*ब्रेकिडैनियो रैरियो*), सियामी फाइटर (*बीटा स्पैन्डिन्स*)।

भारत में रंगीन मछलियों का संवर्धन बींसवी शताब्दी से किया जाने लगा है। आज यह व्यवसाय रोजगार का साधन बन गया है। आज कल कई लोग होटल, पार्क, ऑफिस एवं सार्वजनिक स्थलो में एक्वारियम के

रूप में सेवायें उपलब्ध करा कर अतिरिक्त आय प्राप्त कर रहें है। यह उद्योग कम पूँजी से शुरू कर सकते है।

बच्चे को जन्म देने वाली मछलियां

(1) गप्पी मछली

- बच्चे को जन्म देने वाली प्रसिद्ध रंगीन मछली है।
- नर के शरीर की लम्बाई 3 से.मी. है।
- यह कई रंगों में होती है।
- मादा का आकार बड़ा होता है, लगभग 5 से.मी.।
- इनकी पूंछ छोटी एवं गोल होती है।
- औसत जीवन 18 महीने का होता है।

(2) प्लेटी मछली

- प्लेटी एक आकर्षक व गोल शरीर वाली मछली है, जो लगभग 4 से.मी. लम्बी होती है। यह लाल पीला तथा कोल के साथ कई रंगो में पायी जाती है।
- प्लेटी मछली सामूहिक टैंकों के लिये एक उत्कृष्ट मछली है और आसानी से प्रजनित होती है।

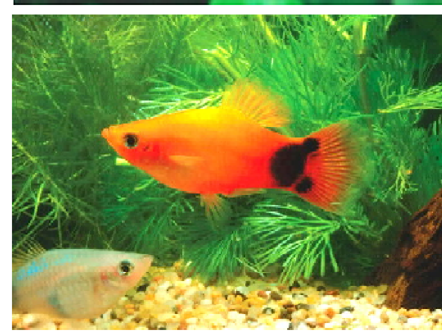

(3) स्वोर्ड टेल

- यह प्लेटी जैसी ही मछली है, लेकिन स्वोर्ड टेल बहुत बड़ी होती है तथा लम्बाई 10 से.मी. तक होती है।
- यह काफी आक्रामक होती है।
- यह एक लोकप्रिय रंगीन मछली है।

(4) ब्लैक मोली मछली

- यह सम्पूर्ण काली मछली है। कभी–कभी रंगीन भी पाई जाती है।
- मोली शाकाहारी मछली है तथा पौधों के पत्तों से एल्गी निकालने मे सहायता प्रदान करती हैं।
- पानी का तापमान कम होना इनके लिये हानिकारक है।

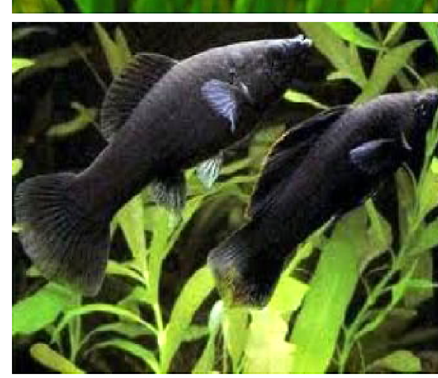

अण्डे देने वाली मछलियां

(1) लाल पूंछ वाली ब्लैक शार्क

- यह पतले किस्म की मछली होती है।
- शरीर का रंग भूरा एवं काला होता है।
- यह एल्गी (काई) खाने वाली मछली है, लेकिन सामान्य रूप से सूखी एवं जीवित आहार खाती है।

(2) नियान टेट्रा

- इस मछली को सभी लोग पहचान लेते है।
- यह बाजार मे सस्ते दामों पर मिल जाती है।
- यह नीली एवं लाल रंग की होती है।

(3) गोल्ड फिश

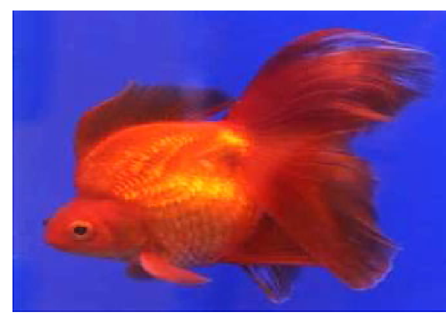

- यह कई रंगों में पायी जाती है, इसका पृष्ठ भाग ओलन तथा पार्श्व भाग गोल्ड व अधरीय भाग हल्के सफेद पीले रंग का होता है।
- यह सभी प्रकार का आहार खाती है परन्तु जीवित आहार ज्यादा पसंद करती है।

(4) फाइटर मछली

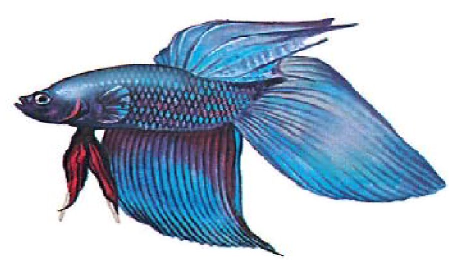

- यह प्रसिद्ध सुन्दर मछली है।
- नर का पंख लम्बा एवं मादा का पंख छोटा एवं फीका होता है।
- फाइटर मछलियां एक साथ समुदाय में नहीं रह सकती।

(5) डिस्कस मछली

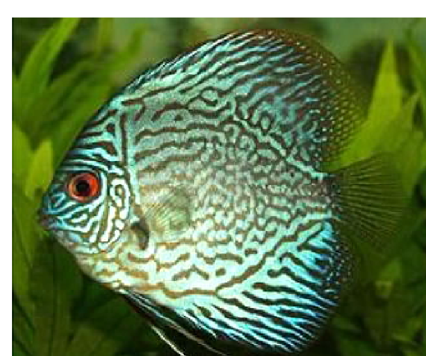

- इनकी अच्छी तरह से देखभाल करने की जरूरत है।
- यह सूखे कीड़े एवं ट्यूबीफैक्स कीड़े खाना पसन्द करती है।
- यह मांसाहारी होती है
- यह 8 इंच तक बढ़ती है।

(6) एंजल फिश

- यह मछली मत्स्यालय के राजा के रूप मे जानी जाती है।
- यह मांसाहारी मछली है। यह मछलियां मच्छर, कीड़े खाना पसन्द करती है।
- इनका आकार 6'' इंच होता है।
- यह पौधे से लगे टैंक मे अच्छे से रहती हैं।

रंगीन मछलियों का पालन

रंगीन मछलियों का पालन सीमेन्ट या फाइबर ग्लास टैंक अथवा छोटे आकार के तालाबो में किया जाता है। इनके लिये पानी का तापमान 24–30 डि. से. उचित रहता है। टैंको का जलस्तर 1–2 फुट तक होना चाहिए। मीठे जल की मछलियों के लिये नल या ट्यूबैल का जल सर्वोत्तम होता है परन्तु जल में क्लोरिन नहीं होनी चाहिए। टैंको या तालाबों में एक आकार के मछलियों के बीज जल भरने के 2–3 दिन के बाद डाले जा सकते हैं। इन्हे खाने में कृत्रिम आहार व प्राकृतिक भोज्य पदार्थ या दोनो ही दिये जा सकते है। कृत्रिम आहार में फ्लोटिंग फीड (तैरते आहार) ग्रेन्यूल (छोटे दाने के रूप में) फ्लैक्स (शल्क या छिलके के रूप में) या टैबलेट के रूप में दिये जा सकते है। कृत्रिम आहार दिन में 1–4 खुराको में विभाजित कर के देने में आहार व्यर्थ नहीं होता। कृत्रिम आहार के साथ प्रतिदिन मछलियों को जीवित आहार भी देना चाहिए। इस क्रम में ट्यूबीफैक्स वर्म, क्लेडोसिरिन (मोईना या जैफनिया) अथवा मच्छरो के लार्वा का उपयोग किया जा सकता है।

प्रजनन

26–28 डि. से. तापमान पर रंगीन मछलियों के प्रजनक वर्षभर प्रजनन करते है, परन्तु इनके जून से अगस्त और दिसम्बर से मार्च तक अंड जनन अधिकतम होता है। बुलबुलेदार घोंसला बनाने वाली मछली (बबल नेस्ट बिल्डर) गौरामी एवं सियामी फाइटर मछलियों का वास्तविक प्रजनन काल मानसून है।

नर व मादा प्रजनकों की पहचान

सजीव प्रजनक मछलियों में लिंग भेद आसानी से किया जा सकता है। नर प्रायः चमकीले रंग का होता है तथा इनका एनल पंख गोनो पोडियम (समागम का अंग) में परवर्तित हो जाता है। वयस्क मादा में एनल पंख की आकृति सामान्य रूप से त्रिभुजाकार होती है और इस प्रकार नर एवं मादा की पहचान होती है।

कुछ सजीव मछलियां स्वभच्छी होती है, जो अपने बच्चों को खा जाती है इसलिये ऐसी अवस्था में बच्चों को बचाना जरूरी होता है। इसलिये मछली घर में या तो पौधों के पत्तें डाल दिये जाते है या पिंजरा छलनी आदि मछली घर के बीच में रख दिये जाते है।

(1) अण्डे प्रजनक मछलियों का प्रजनन

अण्डे देने वाली मछलियां भी दो प्रकार की होती है। कुछ चिपचिपे अण्डे देती है, जो किसी आधार पर

चिपक जाते है, कुछ को आधार की जरूरत नहीं होती। अण्डो की इस विशेषता के आधार पर इन मछलियों का प्रजनन निम्न दो तरीकों से किया जाता है।

(1) चिपचिपे अंडे देने वाली मछली (2) उतराते अंडे देने वाली मछली

i. चिपचिपे अण्डे देने वाली मछलियों का प्रजनन

इस समूह मे मुख्यतः गोल्ड फिश, ब्लैक टैट्रा, बार्ब इत्यादि आती है। इन मछलियों के प्रजनन के लिये प्रजनन टैंक को अच्छी किस्म की मजबूत झाड़ियो से भर दिया जाता है परन्तु यह ध्यान में रखना होता है कि मछलियों को तैरने के लिये पर्याप्त स्थान उपलब्ध हो। झाड़ियो को तालाब में डालने से पहले 5 पी. पी. एम. पोटैशियम परमैंगनेट के घोल में डूबा कर स्वच्छ जल से अच्छी तरह धो लेना चाहिए।

प्रजनन काल में पूर्ण रूप से परिपक्व दो नर एवं मादा मछली को छोड़ दिया जाता है यदि प्रजनक पूर्णरूप से परिपक्व होते है तो अगली सुबह प्रजनन हो जाता है। प्रजनन के समय नर मादा का पीछा करता है। उत्तेजित होकर मादा अण्डे छोड़ देती है तथा नर इन अण्डो के निकट ही पानी में मिल्ट छोड़ देता है। अण्डे यहां वहां झाड़ियो में चिपक जाते है। अण्डो की सुरक्षा करने के बजाये नर एवं मादा इनको खाने के इच्छुक रहते है, इसलिये जितनी जल्दी हो सके प्रजनको को निकाल देना चाहिए। निषेचित अण्डे पारदर्शी होते है जबकि अनिषेचित अण्डे पारदर्शी नहीं होते।

ii. उतराते अण्डा देने वाली मछलियों का प्रजनन

जेब्रा फिश अचिपचिपा अण्डा देने वाली मछलियों का उत्तम उदाहरण है। इसके प्रजनन के लिये मछली घर मे 10 से.मी. पानी होना जरूरी है। मछली घर के तली पर छोटे–छोटे कंकड़ो की परत विछा दी जाती है। कंकड़ो का व्यास 6.8 मि.मी. होना चाहिए। जेब्रा फिश के अण्डे चिपचिपे नहीं होते है इसलिये आधार के लिये जलीय पौधे एवं झाड़ियो की आवश्यकता नहीं होती। प्रजनन के लिये मादा के साथ दो या तीन नर रखे जाते है। मादा को नर के एक दिन पहले रखा जाता है अण्डे उत्पन्न होने के बाद तली में स्थित कंकड़ो के बीच बैठ जाते है। अण्डे दो दिन में संसेचित हो जाते है।

(2) घोंसला बनाने वाली मछलियों का प्रजनन

गौरामी में नर लम्बे और नुकीले डॉर्सल पंख के कारण पहचाने जा सकते है जबकि मादा उदर विकसित अण्डो के कारण फूला हुआ दिखाई देता है। सियामीज फाइटर मछली के नर की पूँछ लम्बी होती है साथ ही डॉलर एवं एनल पंख मादा की अपेक्षा लम्बे और चौड़े होते है। मादा की पूँछ गोलाकार होती है।

इन मछलियों को अंग्रजी में 'बबल नेस्ट बिल्डर' कहते है। गौरामी एवं सियामीज फाइटर इसके अच्छे उदाहरण है। जब ये प्रजनन के लिये तैयार हो जाते है तो नर ताल के किनारे पानी की सतह से वायु निगल कर उसे अपने मुख के द्रव के साथ मिलाता है और मुंह से वापस फूँक कर बुलबुले के रूप में बाहर छोड़ता है, जो पानी की सतह पर अनेको बुलबुले के रूप में इक्कठा हो जाते है। ये बुलबुले आपस में मिलकर लगभग 7 से.मी. चौड़ा एवं 1 से.मी. मोटा झाग जैसा घेंसला बना लेते है।

(3) सिचलिड़ मछलियों का प्रजनन

इन मछलियों में मुख्यतः एंजिल फिश ज्यादा लोकप्रिय है। इसके प्रजनक अपने बच्चो की सुरक्षा के प्रति ज्यादा सजग रहते है। नर की पहचान लम्बे डार्सल एवं एनल पंख के कारण आसानी से हो जाती है। परिपक्व हो जाने पर ये अपने जोड़े का चुनाव करती है तथा प्रजनन के लिये ताल के किसी एक कोने का चयन कर वहां दूसरी सभी मछलियों को भगा देता है प्रजनन ताल में साफ धुले हुये छोटे–छोटे कंकड़ो की लगभग 5 से.मी. मोटी परत बिछा दी जाती है। समागम के समय जोड़े पहले अपने सिर को मिलाते है और फिर होठों को। इस प्रक्रिया में उनके होंठ आपस में फंस जाते है और जब वे दोनों आपस में अपनी तरफ खींचना शुरू करते है यदि दोनों तरफ से बराबर बल लगता है तो समागम सफल माना जाता है। अण्डे देने से पहले प्रजनक के मलद्वार पर एक नलिकार निपल उभर आता है नर का यह भाग मादा की अपेक्षा अधिक नुकीला होता है। मादा अपने उदर को दिवारो से रगड़ती है जिससे कुछ अण्डे बाहर आकर कंकड़ पर जमा हो जाते है। नर पास आकर शुक्राणु द्वारा उनको निषेचित करता है। यह प्रक्रिया कई बार दोहराई जाती है जिससे एक घंटे में 100 से 2000 अण्डे प्राप्त हो जाते है। नर मादा घोंसले की रक्षा पेक्टोरल पंख को हिलाकर करते है। यदि उन्हें खतरे का आभास होता है तो वे अण्डो को खा जाते है। अण्डो को हैच करने में 4 दिन लग जाते है। अब ये सूक्ष्म कीड़े खाना शुरू कर देते है तथा प्रजनको के देखरेख में समूह बनाकर स्वतंत्र रूप से तैरने लगते है।

प्रकृति में मछलियों द्वारा अण्डे देने की कुछ विशेषतायें

एंजिल मछली

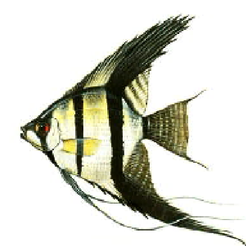

- एंजिल मछली अण्डे देने के लिये बड़े पत्ते को चुनती है। फिर उस पर अण्डे देती है। इसके बाद उपद्रव करने वाले मछलियों से उसकी रक्षा करती है।

टेट्रा मछली

- टेट्रा मछली अपने अण्डे पानी की सतह के ऊपर पाये जाने वाले पत्तों पर देती है।

सिचलीड़ मछली

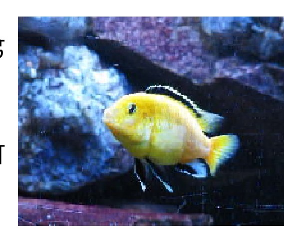

- कुछ मछलियां जैसे सिचलीड़ अंधेरे में प्रजनन करती है, जहाँ पर अण्डे सुरक्षित रहते हैं।
- सिचलीड़ मछली बालू घेरे में अण्डे डालती है। उसके बाद उसकी हैचिंग व सुरक्षा के लिए मुंह में रखती है।

स्टिकलबैंक मछली

- स्टिकलबैंक मछली अपना घर एल्गी से बनाती है एवं कुछ दूसरी मछलियाँ पौंधों से बनाती है।

बार्ब मछली

- बार्ब सतह पर उपलब्ध पौंधों के पत्तो पर चिपकने वाले अण्डे डालती है व उसे हैंच करने के लिए छोड़ देती है।
- यह मछली अण्डो को चपटे पत्थरो पर डालती है व उसकी रखवाली करती है।

सियामीज फाइटर फिश

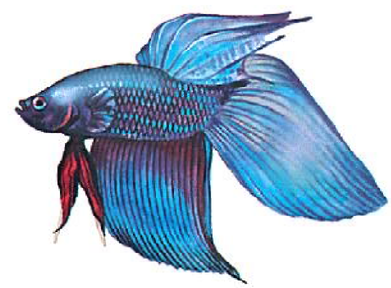

- इन मछलियों के लिए उत्कृष्ट तापमान 27 डि. से. अच्छा होता है।
- नर पहले घर तैयार करता है, फिर मादा को उसके घर में लाता है। तब अण्डे डाले जाते है।
- मादा शांत रहती है और नर उन अण्डो को इकट्ठा कर घर में रखता है।
- नर पुनः गुस्सेदार हो जाता है और मादा को भगा देता है।

गौरामी मछली

- इन मछलियों के लिए उत्कृष्ट तापमान 25.5 डि. से. अच्छा होता है।
- नर मादा को घोसले में इस स्थिति में रखता है कि अण्डे संसेचक होकर घोसलें में रहे।

पॅराडाईज फिश

- नर द्वारा मादा को उत्तेजक करना जिससे अण्डे संसेचक होकर निकलते है।
- इन प्रजतियों का प्रजनन 21–24 डि. से. में होता है।

झेब्रा डॅनिओ फिश

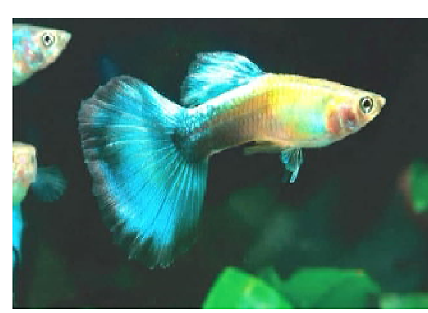

- झेब्रा डॅनिओ मछली का प्रजनन प्रातः काल में होता है तथा तापमान इसके लिए 24 डि. से. होना चाहिए।
- नर मादा के पीछे लगा रहता है।
- नर उसके एनलपंख को खुरदने की कोशिश करता है।
- नर उसके बगल में आता है व उसे पकड़ लेता है।
- तब तक नहीं छोड़ता जब तक वह अण्डे नहीं डालती।

- इसके बाद इन मछलियों को निकाला जाता है क्योंकि वे स्वयं अपने अण्डे खा जाती है।

एक्वारियम मछलियों का आहार

- कई तरह के आहार, जैसे कृत्रिम आहार, पानी के ऊपर तैरते है तथा जब तक उसे खाया न जाय तब तक उसे प्लास्टिक के बर्तन में डाल कर रखा जा सकता है।
- टैबलेट (गोली) या दवाई एक्वारियम में सीधे डाल सकते है, जैसे ये नीचे गिरते है तो मछली इसे आसानी से खा सकती है।
- आहार को जब एक्वारियम में घुमाया जाता है तो मछलियां उस आहार को खाने के लिए आकर्षित होती है।
- अगर झींगा आहार के रूप में देना है तो उसे टुकड़ो में काट लें, उसे मीठे पानी में धोकर कर दे सकते है।
- जीवित आहार जैसे ट्यूबीफिक्स, ब्लडवर्म को प्लास्टिक फीडर में डाला जा सकता है।
- जब ये कीड़े बर्तन से रेंगते हुए बाहर आते है, तभी उन्हें खा सकते है।

एक्वारियम मछलियों में प्रजनन प्रबंधन

- मुख्यतौर पर एक्वेरियम मछलियों में प्रजनन बहुत ही आसान है। फिर भी रंगीन मछलियों के अंडजनन व बढ़त के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाये तो यह और भी सहायक होगा।
- ऐसे एक्वारियम का चुनाव करें जो बड़ा हो तथा ऊपर सही ढक्कन लगा हो। प्रजनन के लिए, लिये गए जोड़ो का बराबर निरीक्षण करते रहें तथा उनके पौष्टिक आवश्यकताओं व नये बच्चों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।
- एक्वारियम में बड़ी मात्रा में छिपने की जगह उपलब्ध होनी चाहिए जिससे आपस में लड़ाई के समय प्रजनकों के मरने की संख्या को रोका जा सके।
- मुख्य एक्वारियम के अलावा एक या अधिक टैंको की व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें विभिन्न प्रजनन पद्धतियों जैसे चुने गए प्रजनको को वातावरण के अनुकूल करना, रंगीन मछलियों के प्रजनन व बढ़त किया जाना आदि। पानी की जांच करें तथा रोज पानी को बदलते रहना चाहिए।
- अंगुलिकाओं को अन्य मछलियों के साथ रखने से युवा अंगुलिकाओं को खतरा, टैंक में पानी की दर उसके क्षमता से एक तिहाई होनी चाहिए। पत्थर तथा अन्य साज–सजावट की वस्तुओं से अधिक छिपने की जगह बना सकते है।
- प्रजनको को वातावरणीय जल के अनुकूल करते समय दोनों जोड़ों को अलग रखा जाए तथा उन्हें दिन में दो या तीन समय उच्च गुणवत्ता वाले व उच्च प्रोटीन युक्त सजीव आहार दिया जाना चाहिए।
- बच्चे देने वाली मछलियों के लिए अलग टैंक का उपयोग किया जाये। बच्चे देने के बाद माँ को अलग किया जाये जिससे वह स्वयं अपने बच्चे को न खा सके।

- स्पान व अंगुलिकाओं के लिये आर्टिमिया उत्तम आहार है। रोज कई बार आहार देने से अधिक बढ़त होती है, लेकिन ध्यान रहें आहार का आकार छोटा हो।
- जब अंगुलिकाओं को अलग टैंक में बढ़त के लिए रखा जाये तो ध्यान रहें कि पहले कुछ दिनों तक 10 प्रतिशत पानी रोज बदलें इसके बाद हर दूसरे दिन पानी को 80 प्रतिशत बदले जिससे उनकी बढ़त अधिक तेज़ी से होगी।
- अंगुलिकाओं की अधिक जीवितता के लिये उन्हें आकार के अनुसार अलग किया जाना चाहिए। जिससे स्वयं के बच्चे खाने की इस प्रवृति को रोका जा सके।
- प्रौढ़ मछलियां बहुत अधिक खाती हैं। आहार की उपलब्धता बनाये रखने से माँ द्वारा बच्चों को स्वयं खाये जाने की प्रवृति को कम किया जा सकता है।
- प्रजनन ट्राप का उपयोग एक्वारियम के अन्दर किया जाता है जिससे अंडे या बच्चों को माता–पिता व अन्य प्राणियों से रक्षा प्रदान की जा सके। ऐसे ट्राप का उपयोग अस्थायी रूप से नये मछलियों व लड़ाकू मछलियों को अलग करने में भी सहायक होते है।
- बच्चों को जन्म देने वाली मछली को महीन पाउडर विशेष आहार के रूप में दिया जाता है या जीवित आहार को दिन में कई बार आहार के रूप में दिया जाता है जिसमें उनकी अधिकतम बढ़त होती है।
- अंगुलिकाओं की वृद्धि अच्छे स्थापित एक्वारियम में बढ़िया व व्यवस्थित आहार से उत्तम पाई जाती है।
- इनका संवर्धन टैंक में एक महीने के लिए किया जा सकता है। इसके बाद इन्हें 30–40 गैलन बड़े एक्वारियम में स्थानांतरित किया जाना चाहिए।
- जैसे ही लिंग पता चल जाए, उन्हें अलग कर देना चाहिए।

केज एवं पेन कल्चर

प्रमोद कुमार वार्ष्णेय, संजय कुमार सिंह एवं अखिलेश कुमार यादव

राष्ट्रीय मत्स्य अनुवंशिक संसाधन ब्यूरो

जलकृषि अनुसंधान एवं प्रशिक्षण इकाई, चिनहट, लखनऊ – 226 028

भारत अपार जल संसाधनों से सम्पन्न देश है। यहाँ 2.35 मि. है. तालाब व टैंक, 3.15 मि. है. जलाशय, 1.2 मि. है. खारा जल, 0.19 मि. कि. मी. नदियां व नहरे, 8,129 कि. मी. समुद्र तट एवं 2.02 मि. कि. मी^{2}. ई. ई. लैंड है। पर्यावरण मंत्रालय के अनुसार हमारे यहाँ लगभग 4.1 मि. है. जलप्लावित क्षेत्र है जिसमें 1.5 मि. है. प्राकृतिक व 2.6 मि. है. कृत्रिम जलप्लावित क्षेत्र उपलब्ध है। यह जलप्लावित क्षेत्र उपजाऊ एवं यहाँ भरपूर मात्रा में पोषक तत्व उपलब्ध है। यह उपजाऊ जल क्षेत्र बेकार खाली पड़े हुए हैं।

देश की बढ़ती जनसंख्या की प्रोटीन मांग की आपूर्ति के लिए मत्स्य उत्पादन को बढ़ाना होगा। उपजाऊ जलप्लावित क्षेत्र जो बेकार एवं खाली पड़े हैं एवं इनका अस्तित्व खतरे में हैं, मत्स्य पालन में उपयोग कर एक ओर प्रोटीन का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है एवं दूसरी ओर इन प्राकृतिक जल स्रोतों का संरक्षण किया जा सकता है। अतः बड़े जलाशयों, झील व बीच में एन्कलोजर कल्चर (पेन व केज कल्चचर) इनका प्रबंधन प्रचलित होता जा रहा है।

परिभाषा

एन्कलोजर जल के अन्दर बाड़ा आदि बनाकर पालन विधि को ही एन्कलोजर कल्चर कहते हैं। पेन व केज कल्चर इसी में सम्मिलित है। एन्क्लोजर कल्चर, पेन कल्चर या केज कल्चपर शब्दकोष के अनुसार एक दूसरे के परियावाची शब्द हैं, परन्तु जलकृषि में ब्वरिड्ज (1987) के अनुसार इनको निम्न शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है।

एन्क्लोजर

प्राकृतिक खाड़ी को बांधना जहाँ एक तट/किनारा ही सब कुछ होता है जिसको कि किसी मजबूत जाल द्वारा बंद किया जाता है।

पैन

यह कृत्रिम मानव निर्मित ढांचा होता है जिसके कि किनारों पर लकड़ी के पोल होते हैं तथा चारों ओर जाल होता है। इसकी तलहटी समुद्र या जलाशय आदि का तल होता है।

पैन या एल्कलोजर बड़े होते हैं एवं इनका क्षेत्रफल 0.1–1000 है. तक होता है।

केज

केज चारों ओर से तथा तलहटी में भी बंद होते हैं। किनारों पर लकड़ी या किसी धातु के पोल होते हैं एवं इन्हे जाल द्वारा चारों ओर से बंद किया जाता है। यह तुलना में काफी छोटे होते हैं एव इनका क्षेत्रफल

1मी^{2} – 1000मी^{2} तक होता है। छोटा साइज होने से सघन मत्स्य पालन के लिए एल्क्लोचर व पैन की तुलना में अधिक उपयोगी हैं।

केज कल्चर के विषय में प्रथम जानकारी कम पूचिया की मिली है। जहाँ मछुआरे *क्लेरियस* स्पे. को बाजार ले जाने लायक वृद्धि तक बांस के केज या टोकरी (बास्केट) में रखते थे। विगत तीन दशकों में अन्तर्स्थलीय जलों में केज कल्चर का तेजी से विकास हुआ है एवं यह पूरे विश्व में विशेष रूप से यूरोप, एशिया, अफ्रीका एवं अमरीका के 35 देशों में फैल गया है। मीठे जल की लगभग 70 से अधिक प्रजातियों का पालन केजो में किया जाता है। पेन कल्चर के उद्भव के विषय में पूर्ण जानकारी नहीं है फिर भी माना जाता है कि इसकी शुरूआत एशिया में हुई। रिपोर्टो के अनुसार, पैन कल्चर का उद्भव जापान के अन्तर्स्थलीय समुद्री क्षेत्रों में 1920 में हुआ। तत्पश्चात् चीन द्वारा 1950 में मीठेजल की झीलों में कार्प मछलियों के पालन के लिए उपयोग में लागया गया। फिलीपिंस में ''लैगूना डी वे'' एवं ''सैक पैबलों झीलो'' में मिल्क फिश *चैनोस–चैनोस* के पालन से आरम्भ हुआ।

भारतवर्ष में केज कल्चर के प्रथम प्रयास 1974 में दलदल (Samp) में वायुस्वासी मछलियों के लिए, बहते पानी में (यमुना) भारतीय प्रमुख कार्पो के लिए 1972–76 में एवं ग्रीन क्रेब (Scylla serrata) के लिए 1977–78 में ट्यूटीकोरिन बे/कारापेड खाड़ी में किया गया।

केज कल्वर तकनीक

केज मत्स्य पालन के लिए उपयुक्त क्षेत्रों के चयन को निम्न तीन श्रेणी (categories) में विभाजित किया गया है।

श्रेणी–1	**श्रेणी–2**	**श्रेणी–3**
तापमान	गहराई	कानूनी आधार
बहाव	क्षरण	उपलब्धता
उतराते ठोस पदार्थ	सबस्ट्रेट	सुरक्षा
प्रदूषण शैवाल जल आदान–प्रदान रोग जीव जन्तु बदबू		बाजार से दूरी

केज कल्वर में सावधानियां

- एक आदर्श केज क्षेत्र में उत्तम गुणवत्ता वाला जल उपलब्ध होना चाहिए। अतः यह जल प्रदूषण रहित हो एवं उसके पी एच, तापमान, आक्सीजन एवं अन्य आवश्यक विषयों में सावधानीपूर्वक जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।
- केज की मछलियों को वास्तविक घुलनशील आक्सीजन केवल जल में उपलब्ध आक्सीजन पर ही आधारित नहीं होती है अपितु केज में जल आदान प्रदान पर भी निर्भर करती हैं। यदि जल में घुलनशील आक्सीजन आदर्श मात्रा से कम होती है तो, भोजन परिवर्तन, वृद्धि एवं स्वास्थ्य प्रभावित होता है।

- यदि जल में गंदलापन जैविक या अजैविक ठोस पदार्थों (मिट्टी का कटाव, खनन व्यर्थ, सीवेज, औद्योगिक उत्सर्जन) के कारण हो तो वह क्षेत्र अनुपयुक्त है। अधिक गदले जल में केज मत्स्य पालन नहीं करना चाहिए।
- औद्योगिक उत्सर्जित जल केज के ढाँचे को मछली एवं उसके भोजन, को नुकसान पहुंचाते हैं।
- औद्योगिक उत्सर्जित जहरीले पदार्थ मछलियों में एकत्र होकर मनुष्य को हानि पहुंचाते हैं। केजों को औद्योगिक उत्सर्जित क्षेत्रों से दूर स्थापित करके इस जोखिम को काफी हद तक दूर किया जा सकता है।
- जहाँ तक संभव हो वह जगह जहाँ जहरीले पदार्थ उत्पादित सायनोबैक्टीरिया हो, से दूर रखना चाहिए। क्योंकि दोनों ही असघन एवं अर्द्ध सघन केज मत्स्य पालन में मछलियां भोजन के लिए पूर्णरूप से वनस्पति प्लवकों पर आधारित होती है।
- बीमारी वाले जोखिम क्षेत्रों में भी केज मत्स्य पालन को दूर रखना चाहिए। जैविक प्रदूषित जलीय क्षेत्रों में बीमारियां अधिक होती हैं।
- चय, अपचय व उत्सजिर्तत पदार्थों के एकत्रीकरण को दूर करने के लिए केज में जल का अधिक आदान प्रदान आवश्यक है।
- केज के लिए क्षेत्र चयन में सुरक्षित स्थान अति आवश्यक है। जहाँ तेज हवाओं का असर न हो। केज की जगह तलहटी ";नइेजतंजमद्ध की भी जाँच करनी चाहिए क्योंकि यह केज संरचना एवं उसे स्थापित करने में आवश्यक है।
- अधिक जल के आदान प्रदान हेतु केज को उपयुक्त गहराई पर लगाना चाहिए तथा केज के पैंदे को तलहटी से दूर रखना चाहिए।
- जलाशय, झील व बील, केज कल्वर के लिए उपयोग में लाये जाते हैं। इनके जल के स्वामित्व को ध्यान में रखना चाहिए।
- संसार में केज मत्स्य पालन में सुरक्षा एक समस्या है क्योंकि केजों को सार्वजनिक जलीय क्षेत्रों में स्थायित किया जाता है। अतः यहाँ चोरी की संभावना बनी रहती है। अतः केजों को ऐसी जगह लगाना चाहिए जहाँ कोई बाधा न हों एवं दिन में कम से कम एक बार देखरेख की जा सके।

केज मत्स्य पालन योग्य प्रजातियां

लगभग 110 मत्स्य प्रजातियां केज व पैन कल्वर के लिए उपयुक्त पायी गयी हैं। इन प्रजातियों में *सिप्रिनस कार्पियों, सामों गार्डिनेरी, सामो खालार, इक्टैल्यूरस पंक्टेटस* एवं *टिलैपिया नायलोटिका* का असघन केज कल्वर अन्य देशों में किया जाता है। भारत में मीठे जल की केजों व पैनों में पाली जाने वाली प्रमुख सिप्रनिड मछलियां, *कतला कतला, सिरीहनस मृरगला, सिप्रिनस कार्पियों* (कामन कार्प), *हायपोफथैल्मिकथिस मौलिट्रिक्स* (सिल्वर कार्प), कैट फिश *मिस्टस सींघाला, आमपाक बायमाकुलेटस* एवं *हैट्रोपिनुस्टस फासिलिस* आदि से अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं। यद्यपि, सिप्रिनिड से अति उत्तम संभावनाएं हैं। इनकी वृद्धि दर तेज, जीवितता दर अधिक, बनावटी पैलट भोजन की ग्रहण क्षमता एवं अधिक घनत्व महत्वपूर्ण खूबियां हैं।

साइज एवं बनाने का सामान

प्रमुख रूप से इनकी शक्ल बक्से के आकार की आयताकार या वर्गाकार होती है। समुद्री औद्योगिक मत्स्य पालन में कुछ अन्य शक्लों जैसे पैंटागोनल, आक्टागोनल एवं डैकागोनल के केज भी प्रयोग में लाये गये हैं। मत्स्य पालन के लिए केजों का साइज मुख्यतः 1 मी^{2} से 100 मी^{2} तक होता है। यह, बनाने के सामान, मत्स्य पालन प्रकार एवं स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर करता है। अमरीका में कैटफिश के व्यावसायिक पालन के लिए 1 मी^{3} के केजों का उपयोग किया गया। अतः इनके रख रखाव व फसल निकालने में सुविधा रहे। पूर्व में में केजों का साइज काफी बड़ा होता है। कभी–कभी यह 150 मी^{3} तक होता है। यूरोपीय समुद्री मत्स्य पालन में भी इसी प्रकार की केजों का उपयोग हो रहा है लेकिन जर्मनी में सालमोनिड मत्स्य उत्पादन के लिए केज साइज 27 मी^{3} मुख्यतः प्रयोग किया जाता है। नीदरलैंड में रेनबों ट्राउट व कार्प के सघन पालन के लिए 6.5 मी^{3} के केजों को सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया जाता है। यहाँ 4 केजों का एक समूह बनाया जाता है। जिसका कुल क्षेत्रफल 26 मी^{3} होता है। भारतवर्ष में छोटे साइज के केज जिनकी रेंज 4.3 मी^{3} से 6 मी^{2} है का उपयोग होता है।

दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में पारंपरिक केज की खेती में बांस एवं लकड़ी का उपयोग होता था परन्तु जापान में सघन मत्स्य पालन में केज बनाने के लिए कृत्रिम जाल का प्रयोग किया जाता है। अमेरिका में कठोर प्लास्टिक की जाली को प्रयोग में लाते हैं। विभिन्न प्रकार की प्लास्टिक की जालियों जैसे नायलोन, कैपरोन, परलोन से सस्ती होती हैं का इस्तेमान उपयुक्त है लेकिन तार की जाली को आसानी से साफ किया जा सकता है। दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों में केज व पैन बनाने के लिए अभी भी मुख्यरूप से बांस का उपयोग किया जाता है क्योंकि यह सस्ता एवं आसानी से उपलब्ध होता है।

कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं हैं जिसमें सभी गुण विद्यमान हों यद्यपि कुछ पदार्थ कुछ विशेष प्रजातियों, साइट एवं उपयोगिता के लिए लाभकारी हैं। इस्तेमाल होने वाले कुछ पदार्थ निम्नलिखित है :

केज व पैन में उपयोगी कुछ पदार्थों की जीवन अवधि

क्र.सं.	पदार्थ	मीठेजल में जीवन अवधि (वर्ष)
1.	बांस एवं लकड़ी	1-2
2.	धातु ड्रम	0.5-3
3.	रबर टायर	5+
4.	पुराने प्लास्टिक ड्रम	1-2+
5.	फोम (स्टायरोफोम)	2-5
6.	फैरोसीमैण्ट	10+
7.	पीवीसी पाइप	5+
8.	गेल बोया (एल्युमिनियम)	10+
9.	प्लास्टिक	5+
10.	एल्युमिनियम सिलिंडर	10+

धारण क्षमता

केज लगाने के लिए जगह के चुनाव में मुख्य रूप से जगह की धारण क्षमता का भी ध्यान रखना चाहिए। सघन मत्स्य पालन में उत्सर्जित व्यर्थ से उत्पादकता प्रभावित (होती) हैं अतः यह जल के जैविक व अजैविक गुणों को प्रभावित करती है। जबकि अर्द्ध सघन व असघन पद्यतियों में मछलियों द्वारा भोजन में शैवालों के अधिक उपयोग से जलीय उत्पादकता का क्षरण होता है। जल की गुणवत्ता में विघटन से मछलियों पर दबाव बढ़ता है एवं बीमारियों की संभावना बढ़ती है तथा मृत्यु का खतरा भी रहता है, जबकि शैवालों के अधिक उपयोग (अर्द्ध सघन/असघन) से वृद्धि दर में गिरावट आती है एवं परिपूरक भोजन पर निर्भरता रहती है। अतः लाभ का प्रतिशत गिरता है। केज मत्स्य पालन के विकास के लिए यह अति महत्वपूर्ण है कि उत्पादकता का सही आंकलन कर जगह का चुनाव करें। इनकी विधियां निम्नलिखित हैं :

असघन मत्स्य पालन

इस विधि में मत्स्य उत्पादन एवं धारण क्षमता पूर्णरूप से प्लवक उत्पादन पर ही निर्भर करती है। एक उष्णकटबंधीय जलाशय में जगह के चयन एवं जल धारण क्षमता को निम्न विधि द्वारा ज्ञात किया जा सकता है :

स्टेप 1 Σ pp 1,200 gm cm^{-2}

स्टेप 2 वार्षिक मत्स्य उत्पादन में परिवर्तित करना

=1.3% pp pp मछली (Fish)

=15.6 मत्स्य $cm^2\,y^{-1}$

=156 मत्स्य $m^2\,y^{-1}$

=156 t वार्षिक उत्पादन जलाशय से (Annual production for reservoir)

स्टेप 3

माना कि 20 ग्राम की मछली संचय की एवं प्रत्येक पालन अवधि में वृद्धि – 500 ग्रा./संचय आवश्यकता = 156 t / 500 gm = 3.3×10^5 अंगुलकाएं (Fingerlings)

अर्द्ध सघन पालन

केज में अर्द्ध सघन मत्स्य पालन का सिद्धांत है कि कम गुणवत्ता वाला सस्ता परिपूरक आहार मछली को दिया जाता है जिससे कि प्राकृतिक भोजन पद भार कम किया जा सके। इस पद्धति में धारण क्षमता निर्भर करती है।

1. जल की उत्पादकता
2. परिपूकर आहर की गुणवत्ता एवं मात्रा आहरण के तौर पर

स्टेप 1 कुल वार्षिक उत्पादन की गणना

स्टेप 2 इसका मत्स्य उत्पादन में परिवर्तन

स्टेप 3 कुल परिपूरक भोजन एवं भोजन अनुपात के आधार पर मत्स्य उत्पादन की गणना।

स्टेप 4 परिपूकर आहार पर उत्पादित मछली एवं परिवर्तित कार्बन द्वारा जनित फास्फोरस की गणना

स्टेप 5 $\Sigma y = (a\Sigma\, pp + (\Sigma\, Food \times FCR) + (b\, \Sigma\, pp\, fish \times depth)$

विभिन्न प्रकार की केजो में मत्स्य पालन के लिए वर्णित उपरोक्त विधियों द्वारा धारण क्षमता का आंकलन अत्यन्त प्रारंम्भिक रूप है एवं इसको एक दिशा निर्देश की तरह उपयोग में लायें। यह साइट विकास का कोई ठोस आधार नहीं है।

प्रबंधन

इस पद्धति में अच्छे उत्पादन के लिए एक प्रबंधक की जिम्मेदारी अधिक है। अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए केज में हानि को कम कर वृद्धि दर को बढ़ाना होगा। अतः निम्न बिंदुओं पर ध्यान देना होगा।

- मत्स्य बीज संचय केज के साइज, मत्स्य प्रजाति एवं पालन विधि अनुसार करें।
- परिपूरक आहार आर्थिकी अनुसार कम लागत का हो।
- केज में जल गुणवत्ता को बनाये रखें।
- केज व उससे संबंधित वस्तुओं का रख रखाव एवं लंगर लगाना।
- समय–समय पर बीमारी आदि के लिए मछलियों की जाँच, मृत मछलियों को निकालना एवं बीमारों का उपचार करना चाहिए।

मत्स्य उत्पादन

(1) केज

विदेशों में प्रयोगात्मक व व्यवसायिक स्तर पर कुल उत्पादन का ब्योरा नीचे दर्शाया गया है।

क्र.सं.	मत्स्य प्रजाति	उत्पादन किग्रा./मी^{3}	उत्पादन किग्रा./मी^{3}/माह
1.	*सिप्रीनस कार्पियो*	7.5–164	2–35
2.	*सी. पंक्टेटस*	30–175	6–19
3.	*एस. गार्डिनेरी*	27–60	7–15
4.	*टी. नाइलोटिका*	34–64	6–17

भारत में केज कल्चर के प्रयोग सीआईसीएफआरआई द्वारा इलाहाबाद में किये गये। यहाँ *सिरहनस मृगला* का उत्पादन 16 कि.ग्रा./मी^{2} हुआ जबकि मिश्रित मत्स्य पालन में दो अन्य प्रजातियों *कतला कतला* व *लेबियो रोहिता* का उत्पादन 2 कि.ग्रा./मी^{2} प्राप्त हुआ। बंगलोर में वायुस्वासी मछलियों, *एनाबास*

टेस्ट्डीनियस, चन्ना पंक्टेटस व *चन्ना स्ट्रायटस* द्वारा 0.3–1.75 कि.ग्रा./मी^{2} माह उत्पादन मिला। *कतला* व मृगल के साथ जैरीटैंक में इलाहाबाद में उत्पादन दर 0.8 कि.ग्रा./मी^{2} माह प्राप्त हुई। बंगलोर में सैनकी टैंक में कामन कार्प की उत्पादन दर 1.54 कि.ग्रा./मी^{2} माह मिली। कार्प फ्राई को संचय कर दो माह में 100 मि.मी. की अगुलिकाएं 90–97.5 प्रतिशत जीवितता दर के साथ प्राप्त की गयी। अंगुलिकाएं उत्पादन के लिए यह एक अति उत्तम तकनीकी है। लैगून व झीलों के खारे पानी का उपयोग झींगा पालन तक ही सीमित है। क्रमबद्ध जाल के केजों को लगाकर *पिनियस इंडीकस* का उत्पादन 1,250–2,880 कि.ग्रा./है. जबकि *पिन्नियस मोंनोडोन* का उत्पादन 1,450 कि.ग्रा./है. प्राप्त हुआ।

(2) पेन

आक्सबो झील व नदी के बेसिन से लगे अन्य जलीय श्रोत महत्वपूर्ण जलीय संसाधन हैं। एक प्रयोग जो मुजफ्फरपुर झील (बिहार) में किया गया, में *कतला कतला, लेबियो रोहिता* एवं *सिरहनस, मृगल* का संचय 5:4:1 औसत वजन 100 ग्राम करके छः माह में औसत वृद्धि 1 कि.ग्रा. प्राप्त कर कुल उत्पादन 4 टन/है की दर से प्राप्त हुआ। एक अन्य पैन कल्चर प्रयोग में कल्ली बैक वाटर में 250 किग्रा./है. की दर से *पिनियस इंडिकस* का उत्पादन मिला। इसी प्रकार के प्रयोग चिल्का झील में *पिन्नियस मोनोडोन* पर कर उत्पादन 100 किग्रा./है. तीन माह में 50 प्रतिशत जीवितता के साथ प्राप्त किया।

कार्प बीज उत्पादन के लिए पैन नर्सरी का विकल्प के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। लगभग 250 मी^{2} के बांस के एक्लोजर *सि. मृगला* एवं *ले. फिम्ब्रियेटस* की अंगुलिकाएं 1.27 मिलियन/है. की दर से 90 दिनों में प्राप्त की गयी।

आर्थिकी

भारत में केज कल्चर की आर्थिकी पर बहुत कम अध्ययन हुआ है, यद्यपि इस विधि में मुख्य लागत केज के आकार एवं प्राकर पर निर्भर करती है। उसी प्रकार चलाने की लागत प्रजाति, क्षेत्र तथा विधि के उपयोग पर निर्भर करती है।

केज कल्चर के लाभ एवं प्रतिबद्धता

केज कल्चर के अनेक लाभ हैं। यह आर्थिक एवं उपलब्ध संसाधनों के अधिकतम उपयोग के लिए सहायक है एवं भूमि पर भार को कम करने में सहायक है। केज को जल स्रोत में विभिन्न प्रकार की पालन विधियों के संयोजन में अपनाया जा सकता है। इसका एक अन्य लाभ है कि इसमें विभिन्न प्रकार की शिकार भक्षी जीव जन्तुओं एवं बीमारियों से मछलियों की रक्षा स्वयं होती है। पूर्ण मत्स्य आखेट की लागत भी कम आती है क्योंकि ऐसे क्षेत्र मुख्यतः शहरी बाजारों के नजदीक होते हैं। इन पद्यतियों में परिपूरक आहार का अधिकतम उपयोग, वृद्धि व मत्स्य मांस में परिवर्तन होता है। यद्यपि इस पद्धति की प्रतिबद्धता है कि रफ सतह, परिपूरक आहार पर आधारित जल्दी–जल्दी जल बदलना, चोरी का खतरा एवं रख रखाव, भोजन देना, संचय करना व केज की देख भाल पर अधिक खर्चा आदि है।

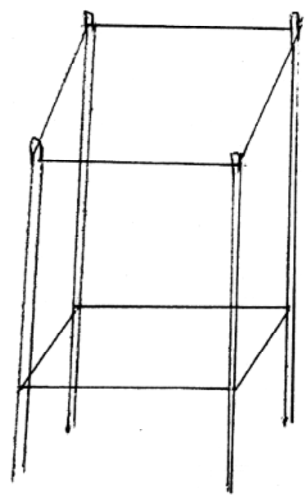

स्थायी केज

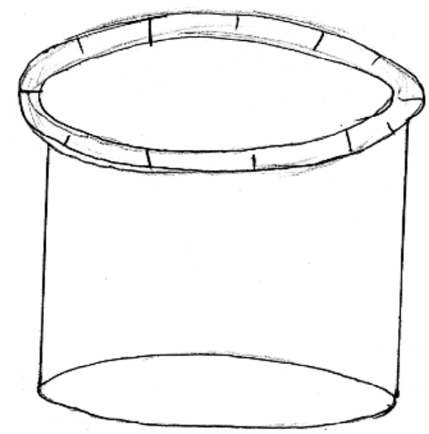

तैरने वाला गोल चौड़े कॉलर का केज

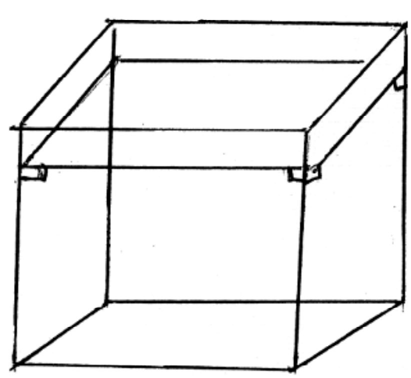

तैरने वाला चौड़े कॉलर का लचीला केज

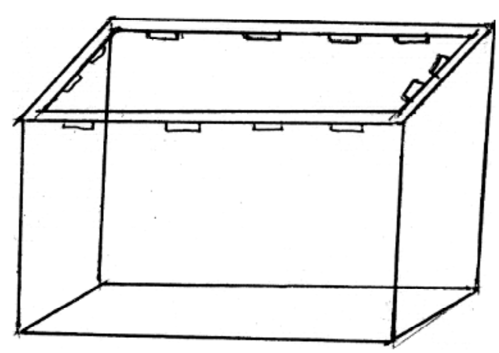

तैरने वाला पतले कॉलर का लचीला केज

भारतीय सौल मछलियाँ तथा इनके पालन की सम्भावनायें

कैलाश चन्द्र यादव, विकास साहू एवं सुधीर रायजादा

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

स्वस्थ पोषण और जैव विविधता संरक्षण के लिए भारत सरकार समय–समय पर अनेक नई योजनायें तथा कार्यक्रम क्रियान्वित करती रहती हैं। कृषि के विकास के लिए देश में सरकार ने प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में आधुनिक तकनीकों पर आधारित कई प्रभावी योजनाओं का उपयोग स्वस्थ भारत के निर्माण के लिए किया हैं। इन योजनाओं के द्वारा कृषि ने विभिन्न रूपों में नये आयामों को प्राप्त किया हैं, जो लगभग 70% जनता की आय का स्रोत हैं, आज भारत स्वयं के साथ कई अन्य देशों को भी खाद्यान उपलब्ध कराता हैं। कृषि उत्पादन का एक महत्वपूर्ण भाग मत्स्य उत्पादन से प्राप्त होता हैं, जो प्रोटीन युक्त पौष्टिक भोजन का उत्तम स्रोत हैं। मत्स्य पालन खाद्यान के साथ, विदेशी आय का भी एक अच्छा स्रोत हैं।

आकड़ों के अनुसार 2007–08 में भारत में कुल मत्स्य उत्पादन 7.13 मिलियन टन था, जिसमें से 2.92 मिलियन टन समुद्री जल से तथा 4.21 मिलियन टन अन्तःर्स्थलीय क्षेत्रों से प्राप्त हुआ, इस उत्पादन में से 541.70 टन विदेश को निर्यात किया गया, जिससे 7620.90 करोड़ रूपये की विदेशी मुद्रा अर्जित की गयी। इस उत्पादन का लगभग 80% से भी अधिक अंश केवल कार्प प्रजातियों के पालन से प्राप्त होता हैं, जिसमें रोहू, कतला, मृगल (भारतीय मेजर कार्प) सिल्वर कार्प, कॉमन कार्प तथा ग्रास कार्प (विदेशी कार्प) मछलियाँ हैं, जबकि कुछ चुनिंदा मत्स्य प्रजातियों द्वारा बाकी उत्पादन अंश का हिस्सा होता है।

आज भी मत्स्य उत्पादन के मुख्य स्रोत प्राकृतिक जल संसाधन हैं, जिसका बड़े पैमाने पर उत्पादन से अधिक दोहन हो रहा हैं, जो कि मत्स्य जीवन और उसकी जैवविविधता के लिए एक बड़ा खतरा बन गये हैं। वर्तमान में अनेक मत्स्य प्रजातियों का अस्तित्व संकट ग्रस्त मछलियों की सूची में शामिल किया जा चुका है तथा अनेकों मत्स्य प्रजातियां इस कगार पर जल्द ही पहँचने वाली हैं।

मत्स्य जैवविविधता बनाये रखने की दिशा में सौल (मरल अथवा स्नेक हेड) मछलियों का संर्वधन एक महत्वपूर्ण उपाय हो सकता है। सौल मछलियाँ भारत सहित अनेक एशियाई देशों जैसे– चीन, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, म्यनमार, थाइलैंण्ड, नेपाल, वियतनाम, कम्बोडिया, फिलिपाइन आदि देशों में पाई जाती हैं। विश्व में मरल समूह की 29 प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जिनमें से भारत में 13 प्रजातियों की अभी तक संतुति की जा सकी है (तालिका 1)। इनमें से पाँच प्रजातियों को विलुप्त प्राय प्रजातियों की श्रेणी में शामिल किया जा चुका है। इनमें से *चन्ना स्ट्राइटस* (धारी वाली सौल) तथा *चन्ना मैरूलियस* (फूल वाली सौल) मछलियाँ पालने की दृष्टि से योग्य व अच्छी हैं। सौल भारत में लगभग सभी प्रदेशों में पाई जाती है। यह सभी प्रकार के जल संसाधनों जैसे–नदी, झील, तालाब, पोखर, झरना, दलदल तथा मार्शी स्थान पर पायी जाती हैं।

सौल में से *चन्ना स्ट्राइटस* (धारी वाली सौल) की अधिकतम लम्बाई 100 सेंमी. तथा वजन 3 किलोग्राम तक होता है। *चन्ना मैरूलियस* (फूल वाली सौल) की अधिकतम लम्बाई 183 सेंमी तथा अधिकतम वजन

सौल (मरल) की भारत में पायी जाने वाली विभिन्न प्रजातियाँ, उनका साइज तथा उपस्थिति

तालिका 1:

क्रम संख्या	प्रजाति का नाम	अधिकतम लम्बाई से.मी.	अधिकतम वजन ग्राम	उपस्थिति
1.	*चन्ना एम्फीवीएस (विलुप्त प्राय)*	90.0 सेंमी.	....	
2.	*चन्ना बरका (विलुप्त प्राय)*	90.0 सेंमी.	....	गंगा, बेसिन
3.	*चन्ना बरमैनिका*	01.6 सेंमी.	....	
4.	*चन्ना बेलहरी*	13.5 सेंमी.	....	डिब्रूगढ असाम
5.	*चन्ना डिपलोग्रामा*	14.0 सेंमी.	....	
6.	*चन्ना गचुआ या ओरिएन्टैलिस*	20.0 सेंमी.	....	महाराष्ट्र
7.	*चन्ना ओरेन्टीमैकुलेटस*	33.0 सेंमी.	....	
8.	*चन्ना मैरूलियस*	183.0 सेंमी.	30कि.ग्रा.	
9.	*चन्ना स्ट्राइटस*	100.0 सेंमी.	3 कि.ग्रा.	
10.	*चन्ना पंकटेटस*	31.0 सेंमी	....	
11.	*चन्ना मैरूलियस आरा*	183.0 सेंमी.	30 कि.ग्रा.	
12.	*चन्ना माइक्रोपैल्टिस*	130.0 सेंमी.	30 कि.ग्रा.	
13.	*चन्ना स्टबर टाई*	25.0 सेंमी.	....	

30 किलोग्राम तक हो सकता है। ये मछलियाँ प्राकृतिक रूप से माँसाहारी होती हैं तथा इनका भोजन मुख्यता छोटी मछलियाँ, टैडपोल आदि हैं, इन मछलियों में स्वभक्षी प्रकृति भी पाई जाती हैं।

सौल मछलियाँ एक से दो साल में प्रजनन योग्य हो जाती हैं तथा वर्ष में दो या तीन बार प्रजनन करती हैं। इनका प्रजनन काल अप्रैल से अक्टूबर तक होता है। सौल मछलियों के अण्डा देने की क्षमता 20,000 से 40,000 प्रति किलोग्राम शारीरिक वजन के अनुसार होती हैं। सौल मछलियों के पालने के लिए अच्छी गुणवत्ता के जल की बाध्यता नहीं रहती है। चूंकि ये मछलियाँ वायुश्वासी होती हैं, अतः कम घुलनशील आक्सीजन वाले जल में भी आसानी से पाली जा सकती हैं। इन्हें छोटे अथवा बड़े आकार वाले तालाबों में भी पाला जा सकता है।

सौल मछलियाँ वैसे तो पालने में बहुत अच्छी हैं, परन्तु इनके पालन में कुछ समस्यायें भी आती हैं, जैसे हैचरी बीज का अभाव, आहार, तथा इनका स्वभक्षी व्यवहार। सौल मछलियों के बीज के स्रोत प्राकृतिक जलीय संसाधन है। सौल मछलियाँ वर्ष में दो या दो से अधिक बार प्रजनन करती हैं तथा इन मछलियों में पैतृक संरक्षण भी पाया जाता है। यह मछलियाँ अण्डे देने के लिए घोंसले का निर्माण करती हैं और अपने बच्चों की सुरक्षा करती हैं, इसी कारण इन मछलियों के बच्चों में जीवितता दर अधिक पाई जाती है। यदि हम सौल प्रजनन तालाबों में प्रजनन काल में ध्यान दें, तो इन मछलियों के बच्चों को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त नई तकनीकी के उपयोग द्वारा सौल मछलियों का प्रेरित प्रजनन भी सम्भव है, जिसमें ओआप्रिम नामक हार्मोन के द्वारा इनमें प्रेरित प्रजनन कराकर इनका बीज आसानी से प्राप्त किया जा सकता

है। चुँकि ये मछलियाँ प्राकृतिक वातावरण में भी रूके हुए पानी जैसे तालाबों, पोखरों आदि में प्रजनन करती है, अतः प्राकृतिक आवासों से बीज प्राप्त करने में अधिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता है।

सौल मछलियों के पालन में आहार भी एक समस्या है क्योंकि सौल मछलियाँ स्वभाव से पूर्ण रूप से माँसाहारी होती हैं जो मुख्य रूप से झींगा, कीटों के लार्वा तथा छोटी मछलियों को खाती हैं। अतः तालाब में इन्हें जानवरों के माँस (जैसे चिकन वेस्ट मील, अतंड़िया, तथा बाजार में बेकार निकाले गये जानवरों के शरीर के अन्य भाग) पर भी आसानी से पाला जा सकता है। इसके अतिरिक्त इन्हे कृत्रिम आहार पर भी आसानी से पाला जा सकता है। इनका स्वनिर्मित आहार, अण्डा, सूखा झींगा, पिसा हुआ सोयाबीन, गेहूँ का आटा, चावल की पालिश, विटामिन मिनरल मिश्रण और कॉड लीवर ऑयल में मिलाकर भी बनाया जा सकता है, जिससे इनकी जीविवता दर लगभग 40–50% तक अच्छी वृद्धि के साथ प्राप्त की जा सकती है।

सौल मछलियाँ प्रकृति में स्वभक्षी होती हैं जिसमें एक मछली अपनी ही जाति की दूसरी छोटी मछली को खा लेती है। ये प्रवृत्ति इनके पालन में बहुत बड़ी समस्या है परन्तु सौल मछलियों को अंगुलिकाओ या जीरे की अवस्था से ही कृत्रिम आहार खिलाकर इनकी स्वभक्षी प्रकृति को दूर किया जा सकता है। साथ ही इनके पालन में यदि अधिक आकार विभिन्नता है, तो बड़ी आकार वाली मछलियों को अलग करना लाभप्रद होता है तथा जिससे तालाब में वृद्धि दर भी एक समान बनी रहती है। जो पालन के लिए उपयोगी और लाभप्रद है। इनके आहार में यदि हम प्रोटीन की मात्रा को 50–60 प्रतिशत बनाये रखें, तो अच्छी वृद्धि तथा गुणवत्ता प्राप्त की जा सकती है तथा लगभग 60% प्रोटीन युक्त माँस प्राप्त होने की सम्भावना रहती है। सौल मछलियाँ अन्य मछलियों की अपेक्षा रोगों के प्रति कठोर होती हैं। इनमें बीमारियों के लगने की सम्भावना अन्य मछलियों की अपेक्षा कम रहती है।

भारत में सामान्यतय अधिक जनसंख्या के कारण छोटे व मझोले किसान मछली पालन का व्यवसाय करते हैं जिनके पास पर्याप्त भूमि तथा अन्य संसाधन नहीं होते जैसा कि अन्य मछलियों के पालन के लिए अति आवश्यक है। इस स्थिति में सौल मछलियाँ अधिक सुविधा जनक हैं क्योंकि ये मछलियाँ छोटे तालाबों में आसानी से पाली जा सकती हैं तथा वायुश्वासी होने के कारण छोटे तालाबों में इनका घनत्व भी अधिक रखा जा सकता है जो कि इन मछलियों की वृद्धि पर अधिक प्रभाव नहीं डालता और छोटे तथा मझोले किसान भी इनके पालन से उचित लाभ कमा सकते हैं और ये मुख्यता वातावरण, जैव विविधता, बनाये रखने में लाभप्रद होगा।

उत्तर प्रदेश की मत्स्य प्रजातियों की विविधता का वर्तमान परिदृश्य

यू.के. सरकार, ए.के. पाठक, वी.के. दूबे, एस.पी. सिंह, जी.ई. खान, एस. रोबेलो, अखिलेश मिश्र, एस.के. मिश्र एवं अमर पाल

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, कैनाल रिंग रोड, तेलीबाग
पी.ओ. दिलकुशा, लखनऊ 226 002

मत्स्य जैवविविधता

भारत दुनिया के 17 मेगा जैवविविधता वाले क्षेत्रों में से एक है, जो कि दुनिया के जैविक संसाधनों में 60.70% योगदान करता है जिसमें प्रजातियों की जैवविविधता 11.72% है। भारत में विशालतम जलीय संसाधन, जो कि नदियों के रूप में 1.6 लाख किलोमीटर की लम्बाई में एक नेटवर्क की भाँति पूरे देश में फैला हुआ है। इन नदियों में पायी जाने वाली मत्स्य प्रजातियाँ एक विशालतम जैवविविधता को दर्शाती है। यद्यपि, हाल के वर्षों में भूमि उपयोग में हो रहे लगातार परिवर्तन, एवं मानवीय क्रिया कलापों के चलते न केवल हमारी जैवविविधता बल्कि समूची पारिस्थितिकी अखंडता को गंभीर खतरा पहुँचा है। यदि भविष्य में भी इन महत्वपूर्ण मुद्दों पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया तो हमारी देश की अमूल्य मत्स्य प्रजातियाँ विलुप्त हो जायेंगी। इस दिशा में बहुत से प्रयास करने होगें, जिससे इस देश की बढ़ती आबादी को खाद्य सुरक्षा और संतुलित पोषण प्रदान किया जा सके और सही मायनों में **"ब्लू क्रान्ति"** का अहसास किया जा सके।

जैव विविधता का आकलन एवं संरक्षण

जैवविविधता का आंकलन एवं अनुरक्षण उनके सतत् संरक्षण को आश्वस्त करने के क्रम में एक महत्तवपूर्ण और बुनियादी कदम है। भारत में स्वच्छ जल में पायी जाने वाली मत्स्य प्रजातियों का आंकलन एवं उत्तरोत्तर अध्ययन हमारी प्राकृतिक सम्पदा को विकसित बनाये रखने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कार्य है, जो कि वैज्ञानिकों द्वारा पिछले कई वर्षों से प्रकाश में लाया जा रहा है। इसी दिशा में एक महत्तवपूर्ण कदम भारत के उत्तर प्रदेश राज्य की मत्स्य प्रजातियों की जैवविविधता का आकलन एवं उनका संरक्षण करना है।

चित्र 1. उत्तर प्रदेश में मत्स्य आवासों की विविधता

उत्तर प्रदेश, भारत के सबसे बड़े राज्यों

में स्थान रखता है। अपने विशालतम जलीय संसाधनों में यह राज्य विविधता–पूर्ण झीलों, जलाशयों, तालाबों और विविध मत्स्य आवासों की प्रचुरता रखता है, जो कि जलकृषि एवं अंतर्देशीय मत्स्य पालन विकास की व्यापक संभावनाओ को दर्शाता है (चित्र 1) हाँलाकि, हाल के कुछ वर्षों में जल की बढ़ती माँग, प्रदूषण जैसी समस्यायों के कारण इस राज्य की पारिस्थितिकी–तंत्र की स्थिरता एवं मत्स्य जैवविविधता को भारी खतरा पहुँचा है। अतः हमारी प्राकृतिक सम्पदा को व्यापक रूप में अध्ययन एवं स्वच्छ जल की मत्स्य प्रजातियों की जैवविविधता के सफल संरक्षण के लिये अतिशीघ्र उपयुक्त प्रयासों की जरूरत है। इसी दिशा में राष्ट्रीय मत्स्य आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा महत्तवपूर्ण कदम उठाये गये जिसके अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में पायी जाने वाली मत्स्य प्रजातियों की विविधता का परिदृष्य, उनके वितरण, प्रचुरता का व्यापक रूप में विशेष आँकलन किया गया। इस अध्ययन का उद्देश्य उत्तर प्रदेश में पायी जाने वाली मत्स्य प्रजातियों की जैवविविधता का मूल्यांकन करना एवं एक व्यवस्थित दृष्टिकोण को सामने लाना था।

इन अध्ययनों में मत्स्य जैवविविधता से जुड़ी कई महत्तवपूर्ण खोजें हुईं जिसमें कुल मिलाकर 12 प्रमुख नदियों, साहायक नदियों, बाँधो एवं अन्य जल निकायों में मीठे पानी में 26 कुलों और 74 पीढ़ी से संबधित 124 मत्स्य प्रजातियों का आकलन किया गया (चित्र 2) इन नदियों में गंगा नदी 90 मत्स्य प्रजातियों के साथ जिसके ज्ञात हुआ कि सर्वाधिक मत्स्य विविधता का प्रतिनिधित्व करती है, जिसके बाद क्रमशः घाघरा, गेरूवा एवं गोमती, इत्यादि, नदियाँ आती हैं। शैनन–विनर विविधता सूचकांक भी गंगा नदी में सबसे अधिक जैवविविधता को दर्शाता है। विभिन्न मत्स्य प्रजातियों की विविधता के साथ ही यह अध्ययन इस राज्य में वितरित विभिन्न मत्स्य कुलों की विविधता को भी दर्शाता है। सबसे अधिक साइप्रिनिडी कुल (52 प्रजातियाँ), फिर बैगीरिडी कुल (10 प्रजातियाँ), उसके बाद सिसोरिडी कुल (8 प्रजातियाँ) एवं चन्निडी कुल (6 प्रजातियाँ) का आंकलन किया गया।

चित्र 2. उत्तर प्रदेश की मत्स्य जैवविविधता

मत्स्य प्रजातियों की प्रचुरता

प्रजातियों की प्रचुरता का अध्ययन जैवविविधता का एक प्रमुख घटक है। एक निर्धारित स्थान में आम या दुर्लभ प्रजाति का अन्य प्रजातियों के सापेक्ष कितनी प्रचुरता है यह जानना किसी भी प्रजाति के संरक्षण के लिये बहुत ही आवश्यक है। इस दिशा में, विभिन्न नदियों में कुछ प्रजातियों, विशेषकर *पुन्टियस टिक्टो, साल्मोस्टोमा बकाइला, एम्बलीफैरीगोडान मोला, रायामस बोला, मिस्टस कैवेसियस, मिस्टस विट्टेटस* इत्यादि प्रजातियों को अधिक प्रचुरता में दर्ज किया गया। इसके विपरीत कुछ प्रजातियाँ जैसे *चिताला चिताला, टोर टोर, ओम्पोक पाब्दा, सिलोनिया सिलोन्दिया* को कमतर संख्या में पाया गया। इसका प्रमुख कारण इन प्रजातियों के प्राकृतिक आवासों में बढ़ता प्रदूषण, मार्ग का अवरोधन, पुलों का निरन्तर एवं बढ़ता निर्माण इत्यादि हैं। इस प्रकार से इन प्रजातियों की संख्या में आ रही गिरावट एक प्रमुख संकट है। यदि भविष्य में भी इन पर समुचित ध्यान न दिया गया तो बहुत सम्भव है कि यह प्रजातियाँ विलुप्त हो जायें। अतः यह

अध्ययन इन विलुप्तोन्मुखप्राय प्रजातियों के विशेष संरक्षण के लिये व्यापक कदम उठाने की नितांत आवश्यकता की ओर इंगित करता है।

प्रजातियों का वितरण

नदियों में मत्स्य प्रजातियों का वितरण भी कई महत्तवपूर्ण सूचनाओं को दर्शाता है। इन अध्ययनों में कुल मिलाकर उन 37 प्रजातियों को विस्तृत रूप से 11 नदियों में वितरित पाया गया जबकि कुछ मत्स्य प्रजातियाँ जैसे *ग्लीप्टोथोरेक्स ब्रेविपिनिस, एम्बलीसेप्स मैंगोइस, ट्रेट्रोडान कुटकुटिया, इसोमस ड्रेनिकस* को एक या दो नदियों में प्रतिबंधित रूप से वितरित पाया गया। इन सभी जानकारियों को भोगोलिक सूचना प्रणाली (GIS) के माध्यम से दर्शाया गया जो कि राज्य में नदियों की विस्तृत श्रृखंला का सम्मिलित रूप से मूल्यांकन करने एव प्रबंधन के लिए भविष्य में लाभकारी सिद्ध होगा।

मत्स्य प्रजातियों का नये स्थानों में वितरण

एक महत्तवपूर्ण खोज के अन्तर्गत, गंगा बेसिन में मीठे जल की विभिन्न मत्स्य प्रजातियों के नये स्थानों में वितरण का अध्ययन हुआ है। कुछ मत्स्य प्रजातियाँ जैसे *एम्बलीसेप्स मैंगोइस, पैंजियो पैजिया, शिस्थुरा रूपीकोला* इत्यादि प्रजातियों का उत्तर प्रदेश के मैदानी इलाकों में कोई पिछला रिकार्ड नहीं है। वर्तमान निष्कर्ष इन मत्स्य प्रजातियों के व्यापक वितरण की ओर संकेत करता है। कुछ अन्य प्रजातियाँ जैसे *ग्लिप्टोथोरेक्स केविया, ग्लिप्टोथोरेक्स ब्रेविपिनिस* जो कि शीतल जल की प्रजातियाँ है, उनको गोमती नदी में पहली बार उपस्थित पाया गया, इसका प्रमुख कारण निरन्तर जलवायु का परिवर्तन माना जा सकता है।

निष्कर्ष

यह अध्ययन वैज्ञानिकों, शोध कर्मियों, छात्रों एवं मछुवारों के सतत् प्रयासों का प्रतिफल है। यह चिंता का विषय है कि अभी भी भारत के अनेक राज्यों में मत्स्य प्रजातियों की जैवविविधता के परिदृश्य के बारे में उपयुक्त ज्ञान का अभाव है। अतः यह अध्ययन एक राज्य की मीठा जल में पायी जाने वाली मत्स्य जैवविविधता का प्रतिनिधितत्व करता है और भविष्य में विभिन्न अध्ययनों के लिए एक व्यापक रूप रेखा तैयार करता है।

आभार

इस लेख से जुड़े सभी लेखक निदेशक, राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ एवं उत्तर प्रदेश स्टेट बायोडाइर्वसिटी बोर्ड, लखनऊ को इस शोध कार्य में प्राप्त सहायता हेतु धन्यावाद ज्ञापित करते हैं।

'बनाना' झींगा पालन पद्धति

एच.जी. सोलंकी, आर.वी. बोरीचांगर, जे.जी. वांझा, बी.के. पटेल एवं आर.जी. पाटील

तटीय क्षेत्र क्षारग्रस्त जमीन अनुसंधान केन्द्र, नवसारी कृषि विश्वविद्यालय, नवसारी

सी. गोपाल, एस.एम. पिल्लइ, पी.के. पाटील, एम. मुरलीधर एवं अरविंद कुमार राय

केन्द्रीय खाराजल जीव पालन अनुसंधान संस्थान, चेन्नई

गुजरात राज्य के तटीय क्षेत्र में हाल में टाइगर झींगा की खेती का बहुत विकास हुआ है, जैसे–जैसे इस प्रकार की प्रवृति गतिशील बनी है वैसे–वैसे इस व्यवसाय में कई प्रकार की समस्याएँ सामने आयी है। टाइगर झींगा को विपरीत वातावरण के सामने टिक सकने की सीमित क्षमताओं को ध्यान में रखकर इस व्यवसाय को लंबे समय तक टिकाने और निरंतर आय के स्रोतों को गतिशील बनाये रखने के लिए दूसरे उपायो की ओर झुकाव करने की जरूरत है।

नवसारी कृषि विश्वविद्यालय, नवसारी और केन्द्रीय

खाराजलजीव पालन अनुसंधान संस्थान, चेन्नई के संयुक्त उपक्रम से वर्ष 2009 से इस विषय पर जोर देते हुए नवसारी कृषि विश्वविद्यालय हस्तक के तटीय क्षेत्र क्षारग्रस्त जमीन अनुसंधान केन्द्र, दांती के संशोधन फार्म पर कई प्रकार के प्रयास किए गए, जिसमें इसे विस्तार के अनुकूल बनाना, झींगा को पिछले एक साल के दौरान 10 और 20 इकाई प्रति वर्गमीटर झींगा बीज दर के अनुसार 'बनाना' झींगा का पालन किया गया। इस दौरान 'बनाना' झींगा ने 120 से 130 दिनों में 15 से 20 ग्राम वजन ग्रहन किया। एक हैक्टर में 1–2 टन उत्पादन मिला और पालन के दौरान यह भी देखने को मिला कि इस झींगा की प्रजाति ज्यादा खारा पानी के सामने टिके रहने में सक्षम होने के साथ–साथ न्यूनतम तापमान 10 से 13^0 से.ग्रे. तक भी जीवित रह सकता है। सर्दी के समय में जब टाइगर और अन्य झींगा की खेती कम तापमान पर सक्षम न होने के कारण 'बनाना' झींगा पालन को प्रोत्साहित करना चाहिए क्योंकि सर्दी के मौसम में 'बनाना' झींगा की अच्छी वृद्धि देखने को मिली है और इसकी खेती कम तापमान पर भी उपज देने में सक्षम है।

'बनाना' झींगा को सर्दी के समय में पालन करने के लिए निम्न प्रकार की पद्धति अपनायी जाती है :

1. तालाब की तैयारी

झींगा पालन के पहले तालाब की तैयारी झींगा पालन की सफलता का एक अहम अंग माना जाता है। जो बाद में तालाब के आतंरिक वातावरण को स्थाई रखने तथा मिट्टी में जमा हुए हानिकारक कार्बनिक तत्वों को हटाने में मदद करता है। तालाब की तैयारी निम्न दो पद्धतियों से की जाती है।

1.1 शुष्क पद्धति

इस पद्धति में झींगा की हारवेस्ट के बाद तालाब की गीली मिट्टी को सूर्य ताप पर रखने से सूखी मिट्टी में दरारें आती हैं। जिससे मिट्टी में जमा हुए हानिकारक कार्बनिक तत्वों का ओक्सीडेसन होता है और इससे इस हानिकारक तत्वों का असर नष्ट हो जाता है, उसके बाद जमीन की उपरी सतह को मानव बल या यांत्रिक संसाधनों की सहायता से हटाया जाता है।

1.2 नम पद्धति

मानसून क्रॉप के तुरंत बाद गीली मिट्टी में क्वीक लाइम का छिड़काव करके, दो दिन तक सूर्य प्रकाश में खुला रख के, ज्वार का पानी तालाब में लेकर दो–तीन बार धोना चाहिए और जोर से पानी प्रवाहित करके दो–तीन बार धोना चाहिए। इस प्रकार से तालाब के तल पर जमा हुई काली मिट्टी दूर हो जायेगी। इस पद्धति का प्रयोग पानी निकाल जाने की समस्या वाले तालाब में उपयोग किया जाता है।

2. चूना का छिड़काव

तालाब में से हानिकारक पदार्थ को दूर करने के बाद तालाब की जमीन के पी.एच. के आधार पर चूना का छिड़काव करके तालाब में पानी डालने की शुरूआत कर सकते है।

3. पानी संग्रह तालाब (रीजर्वायर) में पानी का सींचन

पानी संग्रह तालाब में (रीजर्वायर) ज्वार का पानी डाल के उसको पूरी मात्रा में स्थिर हो जाने के बाद 300 किलो प्रति हैक्टर के हिसाब से ब्लीचींग पावडर (लभ्य कलोरीन की मात्रा न्यूनतम 30%) से ट्रीटमेन्ट किया जाता है। पानी संग्रह तालाब में पानी का ट्रीटमेन्ट करने के बाद क्लोरीन की मात्रा न्यूनतम होने के बाद ही रीजर्वायर के पानी को फिल्टरेशन यूनिट से पास करके तालाबों को भरते हैं, इसके बाद पानी के पी.एच. को ध्यान में रखते हुए कैल्सियम कार्बोनेट से ट्रीटमेन्ट करके, तालाब के पानी को नियमित उर्वरक दे कर तैयार किया जाता है।

4. झींगा बीज संग्रह

तालाब के पानी का हल्का हरा रंग हो जाने के बाद झींगा बीज को तालाब में छोड़ना चाहिए। जिससे नवजात बच्चों को पूरी मात्रा में कुदरती खुराक (प्लांकटोंन) मिल सकें। झींगा के बीज की थैलिओं को आधे घंटे के लिए तालाब के पानी में रहने दिया जाता है और बाद में थैली और तालाब के पानी का तापमान एक जैसा हो जाने पर धीरे–धीरे इस बैग में थोड़ा–थोड़ा तालाब का पानी डाल के झींगा बीज को एक्लेमटाइज करने के बाद ही उसको तालाब में छोड़ना होता है।

5. खाद्य व्यवस्थापन

शुरूआत में एक लाख बच्चों के लिए 1 किग्रा खाद्य पदार्थ देना चाहिए जिसमें प्रोटीन की मात्र 35% होनी चाहिए। 35 दिन तक ब्लाईंड फीडिंग हो जाने के बाद तालाब में रखे हुये ''चेक ट्रे'' को देखकर खाद्य का व्यवस्थापन करते है। खाद्य में सप्ताह में दो दिन CIBASTIM मिलाकर झींगा को खाना दिया जाता है। सीबास्टीम झींगा की स्फूर्ति बढ़ाने और विकास में मदद करता है। शुरूआत में झींगा को उसके वजन के 10% के हिसाब से खाना देना चाहिए और पालन के अंत में 2% तक घटाना चाहिए।

6. जल और जमीन गुणवत्ता जांच व्यवस्थापन

जल और मिट्टी के व्यवस्थापन के लिए नियमित रूप से जांच करके उसके अनुसार उसका ट्रीटमेन्ट प्रोबायोटीकस या इसके अलावा एग्रीकल्चर लाइम, डोलोमाइट और जियोलाइट का उपयोग करना जरूरी है। झींगा पालन के दौरान बचा हुआ खाना, झींगा का मल और प्लांकटोंन के मरण से तालाब की मिट्टी खराब हो जाती है, इसके निवारण के लिए जैविक उपचार पद्धति अपनानी चाहिए। तालाब में जरूरी मात्रा में प्राणवायु को रखने हेतु एवं थर्मल स्ट्रेटीफीकेशन दूर करने के लिए एरेटर का उपयोग करना जरूरी है। तालाब में एरेटर का उपयोग निम्न अनुसार से करना चाहिए।

क्र.सं.	एरेशन के घंटे	माह
1.	1 घंटा	पहला
2.	2 घंटा	दूसरा
3.	4 घंटा	तीसरा
4.	6 घंटा	चौथा

7. हार्वेस्टिंग

'बनाना' झींगा की हार्वेस्टिंग साइज 15–20 ग्राम, 120–130 दिनों में हो जाती है और प्रति हैक्टर औसत 1 टन से 2 टन उत्पादन मिलता है। इसके अलावा इस झींगा में 30 इकाई प्रति वर्गमीटर के संग्रह दर तक किसी प्रकार के रोग देखने को नहीं मिले हैं। 'बनाना' झींगा की 16 ग्राम की हार्वेस्टिंग साइज़ प्राप्त करने के लिए उत्पादन खर्च प्रति किलो ग्राम रु. 135 से 140 तक आता है।

कीटनाशक एवं प्लास्टिक प्रदूषण का असर मछलियों की प्रजनन क्षमता पर

रीता वर्मा एवं ए.के. सिंह

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

किसी राष्ट्र की प्रगति एवं विकासशील होने के पीछे उस राष्ट्र के भौतिक संसाधनों का हाथ होता है। अतः हमारे देश की नदियों की समृद्धि देश की समृद्धि है किन्तु, औद्योगिकीकरण एवं अत्यधिक उत्पादन की होड़ में मानव सिर्फ अपने विषय में सोच रहा है। वह इस बात से क्यों अनजान है कि वह जिस वातावरण को विषैला बना रहा है उसी वातावरण में वह रहता है। वह इस बात पर विचार नहीं कर रहा है कि दिन प्रतिदिन जो प्लास्टिक व कीटनाशकों को वह नदी नालों में वहा रहा है उसी का सेवन किसी न किसी रूप में कर रहा है।

विकासशील देश एवं जनसंख्या विस्फोट के कारण यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि प्रत्येक व्यक्ति प्लास्टिक, रेजिन, पालीथीन, भोजन पैकजिंग, पानीविनाइल, क्लोराइड युक्त चिकित्सा के उपयोग से अछूता नहीं है। किन्तु इन पदार्थों के अपघटन से उत्पन्न हानिकारक पदार्थों की सुरक्षित एवं घातक मात्रा का कोई राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मानक नहीं है। अतः इन सभी समस्याओं को देखते हुये देश–विदेश में विभिन्न संस्थानों में शोध कार्य किये जा रहे है। ब्रिटेन के पालीमाउथ विश्वविद्यालय के मरीन पालूशन के शोध के अनुसार इंग्लैण्ड के तट पर एक तिहाई मछली के पेट में प्लास्टिक है, विस्फेनोल A, PCB जैसे केंमिकल और सिथेटिक रंगों से बनी प्लास्टिक के सेवन से मछलियां जहरीली हो रही है एवं राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (भारत) ने अनुमान लगाया है कि लगभग 14 बिलियन पौंड कचरा समुद्र में फेक दिया जाता है। इंडो–अमेरिका शोध पुरस्कार प्राप्त डा. राम प्रताप सिंह के अनुसार प्लास्टिक प्रदूषण पुरुषों की प्रजनन क्षमता को प्रभावित करता है, डब्लूएचओ के अनुसार पुरुषों की प्रजनन क्षमता और शुक्राणुओं में जबरदस्त गिरावट आयी है।

आई आइ टी आर के के.पी. सिंह, अमृता मलिक के अनुसार गोमती नदी में एच सी एच, थैलिक एसिड एस्टर जैसे रसायनों की मात्रा को नापा गया है। इन सभी शोध पत्रों का अध्ययन एवं गोमती नदी के 25 से 40 ड्रेनजों के पानी एवं मछलियों का अध्ययन करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि ये पदार्थ जलीय जन्तुओं के शरीर में एबजार्ब कर लिये जाते है जो शरीर की सामान्य क्रियाविधि में बाधा उत्पन्न करते है। प्लास्टिक एवं कीटनाशकों से फैलने वाला प्रदूषण मछलियों की प्रजनन क्षमता को प्रभावित कर रहा है। प्रयोगशाला में विसफिनाल एवं थैलिकएसिड एस्टर का भारतीय मेजर कार्प पर प्रयोग के बाद यह निष्कर्ष आया है कि ये इण्डोक्राइन सिस्टम को प्रभावित करते है। ये आसानी से लिपिड घुलनशील होने के कारण जन्तुओं के उतकों में अवशोषित हो जाते है। एवं अन्तःस्रावी तन्त्र की कोशिकाओं एवं रिसप्टर के निरन्तर सम्पर्क में आते है। अतः ये अन्तः जीवी हार्मोन की प्रतिद्वंदिता कर उनकी गतिविधियों को प्रभावित करते है जिस कारण कार्यरत प्रोटीन की मात्रा बनती है या नहीं बनती और प्रजनन क्षमता प्रभावित होती है।

इस प्रकार के रसायनों से मछलियों में आरएनए एवं डीएनए की प्रतिशतता भी कम हुयी है अतः यह दर्शाता है कि मछलियों में इस स्तर पर न्यूट्रीशन प्रभावित हो रहा है। जीन स्तर पर इन रसायनों के प्रभावों का अध्ययन जारी है।

मुख्य रूप से अन्तःस्रावी अंग को प्रभावित करने के कारण यह रसायन अन्तःस्रावी भंगक कहलाते है। अन्तःस्रावी भंगक दैनिक जीवन के विभिन्न उपयोगी पदार्थों में उपस्थित हैं जैसे :

1. डिटर्जेंट
2. कीटनाशक
3. कागज निर्माण हेतु रसायन
4. प्लास्टिक उद्योग में रसायन
5. आटोमोबाइल्स का धुआ
6. गर्भनिरोधक गोलियां एवं विभिन्न मेडिकल कचरा
7. भोजन पैकजिंग में प्रयुक्त प्लास्टिक
8. घरेलू अपशिष्ट।

विभिन्न प्रकार के जैविक अपशिष्टों की बढ़ती मात्रा के कारण पर्यावरण में प्राकृतिक अन्तःस्रावी भंगक की मात्रा बढ़ी है।

इस विषय को गम्भीरता से लेते हुये इस पर देश–विदेश में विभिन्न प्रकार की वाद–विवाद, संगोष्ठियों का आयोजन किया गया। दिनांक 6 सितम्बर 2012 में लोकसभा में कीटनाशकों से होने वाले स्वास्थ खतरों एवं प्रतिबन्धित कीटनाशकों के विषय पर चर्चा की गयी। प्रमुख चर्चा निम्न विषय पर हुई :

1. अन्य विकसित देशों में प्रतिबन्धित कीटनाशकों का प्रयोग भारत में क्यों हो रहा है ?
2. नई कृषि नीति तैयार करें जिसमें जैव उर्वरकों के उपयोग को बढ़ावा मिले और कीटनाशकों का विवेकपूर्ण उपयोग हो।

विभिन्न प्रयोगों से पता चला है कि लगातार सर्वव्यापी ट्यूवयूलिन क्लोराइड एडीपोस उतकों में भिन्नता लाती है तथा वसा का जमाव करती है। वन्य जीवों में प्रजनन समस्या एवं मानवों में स्तन कैंसर, पुरुषों में प्रजनन पथ में समस्या की परिकल्पना आदि, स्वास्थ एवं पारिस्थितिकी पर पड़ रहे इण्डोक्राइन भंगक के प्रतिकूल प्रभाव को रोकने के लिये सबसे स्थायी रास्ता है कि इस प्रकार के रसायनों युक्त प्लास्टिक के प्रयोग को कम किया जाय। एवं इनके विघटन का कोई बेहतर उपाय किया जाय। इण्डोक्राइन भंगक पर विभिन्न प्रकार के जागरूकता अभियानों एवं शोध को बढ़ावा देना चाहिये।

एन.बी.एफ.जी.आर. द्वारा विभिन्न प्लास्टिसाइजर एवं वाइप्रोडक्ट रसायनों द्वारा भारतीय मेजर कार्प में किये गये शोध के अनुसार यह पता चला है कि ये रसायन मछलियों के गोनेडो सोमेटिक इण्डेक्स पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है, ये मछलियों के लिंग निर्धारण पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालते है। प्रयोगों के दौरान विभिन्न परिणामों से लिंग परिवर्तन एवं इण्टरसेक्स जैसे घातक परिणाम सामने आये है जिसमें मछलियाँ पुनः ब्रीड नहीं कर पाती।

भारत में पाकू मछली : एक दृष्टांत

दीपमाला गुप्ता, शरद चन्द्र श्रीवास्तव, रीता वर्मा, अबूबकर अंसारी एवं ए.के. सिंह

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

पाकू दक्षिण अमेरिका के मीठे जल में रहने वाली मत्स्य प्रजाति है, जो ब्राजील मूल की मछली है। ये प्रवासी होती है इनका भारत में प्रवेश कब और कैसे हुआ ये अब तक एक रहस्य है। किन्तु अब पाकू यहाँ मत्स्य पालन एवं रंगीन मछली के रूप में लोकप्रिय हो रही है। इसका बड़ा आकार, खाने सम्बन्धी आदते तथा अच्छी उपज के कारण इस मछली को मत्स्य पालन व्यवसाय के लिए मत्स्य–पालक अपना रहे है। पाकू को कम लागत वाले भोज्य–पदार्थों पर आसानी से पाला जा सकता है तथा ये कम ऑक्सीजन के जल में जीवित रहने की छमता रखती है।

रंग–रूप– पाकू मछली कई रंगों में पायी जाती है, स्लेटी से काली रंग की प्रजातियों को 'काली पाकू' के नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार लाल–पेटवाली प्रजाति को 'लाल–पेट पाकू' कहते है, पाकू प्रजाति मछली घरो में रखने के लिए बहुत लोकप्रिय है, ये मछलियाँ 3 फीट लम्बी तथा 25 किलो तक वजन की हो सकती है। इनका जबड़ा बहुत शक्तिशाली होता है तथा दाँत सीधे, चौकोर बिल्कुल मनुष्यों जैसे होते है।

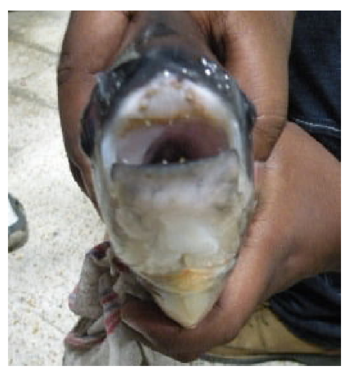

खान–पान– पाकू सर्वाहारी होती है। ये प्रमुख रूप से कीड़े–मकोड़े, फल सड़े–गले पौधे व पेड़ों से गिरे नट्स खाती है, ऐसी अपवाह है की पाकू मानव–अंडकोष पर आक्रमण करती है जिस कारण इसका उपनाम 'गेंद–कटर' भी है।

प्रजनन– आमतौर पर पाकू नवम्बर से मार्च की अवधि में प्रजनन करती है। जब जल का तापमान लगभग 26 डिग्री सेल्सिअस होता है। प्राकृतिक परिस्थितियों में एक किलो की पाकू 0.4–1 लाख लार्वो को जन्म दे सकती है। जन्म–ग्रंथि को पकने के लिए कई पर्यावर्णीय कारक जैसे– तापमान, जलस्तर तथा वर्षा के रूप में सह क्रियाशील उत्तेजना की आवश्कता होती है जिस कारण प्रजनन, प्राकृतिक पर्यावरण में ही संभव है।

मत्स्य–पालन– विदेशों में पाकू को परंपरागत मिट्टी के तालाबों में विकसित किया जाता था परन्तु अब बड़े पैमाने पर धातुओं के चल–पिंजरों में इनका पालन हो रहा है। ये मछली अपनी असाधारण वृद्धि–दरों के कारण सघन–प्रजनन के लिए उपयुक्त मानी जाती है, किन्तु प्रजनन अप्राकृतिक रूप से हार्मोनों के द्वारा ही कराया जा सकता है। कल्चर–तालाबों में ये प्राकृतिक रूप से प्रजनन नहीं करती, व्यापक प्रणाली के तहत मिट्टी के तालाबों में 1.2 किलो तक होने में 2 वर्ष तक का समय लग जाता है जबकि संवर्धित पाकू को तैयार आहार देने पर 1.2 किलो का भार होने में 12 माह का ही समय लगता है।

जीवन चक्र

पाकू मछली को अपने जीवन में बहुत अलग–अलग चरणों की जरूरत नहीं होती, ये लगातार ताउम्र, बिना किसी बड़े, बदलाव के बढ़ती रहती है। एक पाकू मछली के जीवन चक्र को मोटे तौर पर किशोर व वयस्क अवस्था में वर्गीकृत किया जा सकता है किशोरावस्था बहुत छोटी होती है, जो 6–12 माह में खत्म हो जाती है। वही वयस्क अवस्था 30 साल या उससे भी अधिक की हो सकती है।

इस मछली की किशोरावस्था में तेजी से वृद्धि होती है, मात्र कुछ से.मी. से ये 1 फुट तक लम्बी हो जाती है। इस चरण के दौरान पाकू मछली एक पिरान्हा, जो कि इसकी चचेरी बहन है के आकार के बराबर होती है और यहाँ तक कि पिरान्हा जैसा लाल रंग का पेट भी होता है इस प्रकार का प्राकृतिक अनुकरण पाकू मछली द्वारा जीवित रहने की तकनीकी है केवल ये पिरान्हा जैसी दिखती ही नहीं है, बल्कि ये भी खतरनाक मांसाहारी की तरह व्यवहार प्रकट करते हुए समूहो में यात्रा करती है। किशोरावस्था में पाकू किसी भी प्रकार के खतरे से बचने के लिए समूहों में यात्रा करती है। किशोरावस्था में पाकू मछली वयस्कों की तुलना में अधिक आक्रमक होती है। कभी–कभी दूसरी छोटी मछलियों को काट लेती है यहाँ पर भी ये व्यवहार पिरान्हा के समान है जैसे–जैसे पाकू मछली परिपक्व होती है ये धीरे–धीरे अपना रंग खो देती है। पाकू की विभिन्न प्रजातियों के वयस्क के रूप में अलग–अलग रंग है लेकिन आमतौर पर अपने किशोर रंगों से कम चमकदार होते है।

किशोरावस्था में पाकू मछली का लिंग बताना मुश्किल है परन्तु परिपक्व होने पर नर व मादा पाकू को अलग किया जा सकता है। नर में पृष्ठीय पंख कुछ बड़ा होता है तथा गुदा पंख अधिक मोटा होता है। ये अधिक रंगीन होते है परन्तु मादा की तुलना में आकार में छोटे होते है।

भारत में प्रवेश– पाकू मछली का बंगाल के रास्ते सन् 2003 या 2004 में भारत में प्रवेश हुआ है। बंगाल में मत्स्य–पालक बड़ी संख्या में इस मछली के बीज को बढ़ा रहे है। मुख्यतः मांसाहारी प्रजातियों में मत्स्य–पालक अधिक रूचि ले रहे है, वे न केवल एक विदेशी प्रजाति की मछली का उत्पादन कर रहे है, बल्कि संकरण कार्यक्रमों द्वारा विदेशी मछलियों की संकर प्रजातियाँ भी उत्पन्न कर रहे है। ऐसा करना परिस्थितिकीय दृष्टि से भी हानिकारक हो सकता है परन्तु मत्स्य–पालक आनुवंशिकी में इस प्रकार के बदलाव से होने वाले खतरे से अनभिज्ञ है। इस कारण वैज्ञानिकों द्वारा इस विदेशी मछली व इसकी आनुवंशिकी पर खोज करना अत्यन्त आवश्यक समझा जा रहा है। अब, जब कि यह भारत में प्रवेश कर फल–फूल रही है इस मछली का हमारी देशी मछलियों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है यह जानना भी आवश्यक है, अतः इस ओर प्रयास चल रहे हैं।

पाकू मछली तथा व्यवसाय

भोजन के रूप में– पाकू विभिन्न कारणों से कई देशों में प्रवेश कराई गई तथा कई देशों के स्थानीय लोगों

के लिये ये भोजन स्रोत के एक अच्छे विकल्प के रूप में सामने आयी। इसके आकार तथा गर्म वातावरण में रहने की अनुकूलता के कारण ऐसा महसूस किया गया कि ये उन देशों के लिये जहाँ भोजन महंगा व आय कम है, भोजन का अच्छा विकल्प है।

सजावट के तौर पर मछली घरो में– आमतौर पर मछली घरों के मालिकों को ये 'शाकाहारी पिरान्हा' के रूप में बेची जाती है। पाकू को हमेशा बहुत बड़े एक्वेरियम में रखना चाहिए, साथ ही कुछ तैरने वाले जलीय पौधें को भी जल में डाल देना चाहिए। जिससे उन्हें प्राकृतिक वातावरण में होने का एहसास रहे। उचित उपकरण और प्रतिबद्धता के साथ पाकू मछली को पालतू बनाया जा सकता है। मछली शौकीनों के लिये पाकू अच्छा विकल्प है।

पहचान सम्बन्धी समस्या– इन मछलियों के चल वर्गीकरण अनियमित व विवादास्पद हैं। इन मछलियों में विभिन्नता होते हुये भी बाह्य रूप में बहुत अधिक समानता पाये जाने के कारण इनको अलग–अलग पहचानना एक टेढी खीर है जो आम जनता व मत्स्य–पालकों के लिए समस्या का सबब है। यहाँ तक की पाकू का आकार अपनी चचेरी बहन पिरान्हा से बहुत मिलता–जुलता है। जिस कारण पहचानने में अकसर भ्रांति हो जाती है। यहाँ बताना आवश्यक है की पिरान्हा एक मांसाहारी मछली है।

पाकू मछली के समावेश संबन्धित समस्याएं

- पाकू की एक बड़ी आबादी किसी पारिस्थितिक तंत्र में प्रवेश करती है तो अन्य देशी मछलियों पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है।
- मछली विक्रेता 2–3 इंच लम्बी मछली बेचते है और ग्राहकों को चेतावनी नहीं देते की पाकू का आकार टैंक में बहुत बड़ा भी हो सकता है।
- एक पारिस्थितिकी तंत्र के लिए नई प्रजाति के रूप में निवास स्थान व अन्य संसाधनों के लिए देशी प्रजातियों से प्रतिस्पर्धा कर सकते है तथा विदेशी परजीवी या बीमारियों को शुरू कर उन्हें विस्थापित कर सकते है।

मत्स्य सेल लाइन : एक समीक्षा

अखिलेश कुमार मिश्र, मुकुन्दा गोस्वामी, रविन्द्र कुमार, एन.एस. नागपुरे, अखिलेश दूबे, अमित मिश्र, राज बहादुर, अविनाश रसाल एवं अजय कुमार सिंह

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

मत्स्य शरीर से प्राप्त कोशिकाओं को उपयुक्त माध्यम से संवर्धित कर विकसित की गयी सेल लाइनें जैव अनुसंधान के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोगी सिद्ध हो रही हैं। अब तक प्रकाशित शोध पत्रों में 100 से अधिक मत्स्य प्रजातियों अथवा उनकी संकर प्रजातियों से लगभग 300 सेल लाइने विकसित किये जाने का उल्लेख मिलता है। जिसमें से 60% सेल लाइने विश्व जलकृषि उत्पादन का 80% उत्पादित करने वाले एशियाई देशों में ही विकसित की गयी है।

वर्ष 1962 से लेकर आज तक टीलियोस्ट मछलियों की सेल लाइनें विभिन्न ऊतकों तथा अंगों से विकसित की गयी है। लगभग तीन दशकों के समय में कोशिका विज्ञान की इस विधा ने प्रभावशाली प्रगति की है। अनेक वैज्ञानिकों द्वारा समय–समय पर उपलब्ध मत्स्य सेल लाइनों एवं उनसे प्राप्त अन्य उपयोगी सूक्ष्मजीवों का विवरण प्रस्तुत किया गया है इनमें वुल्फ तथा मान (1980), हेट्रिक तथा हेड्रिक (1993) एवं लाकरा तथा स्वामीनाथन (2011) प्रमुख हैं।

वर्तमान परिप्रेक्षय में विश्व के वैज्ञानिक समुदाय द्वारा अनेक मछलियों के निरन्तर विकसित की जा रही सेल लाइनों के मूल में कदाचित् मछलियों के रोगजनक विषाणुओं के निष्कर्षण व उनकी पहचान करने का एक साधन उपलब्ध कराना है जिससे मछलियों के रोगों की रोकथाम के उपाय किये जा सकें। इस प्रकार मत्स्य सेल लाइनों का विकास जलीय कृषि उत्पादन एवं इससे सम्बन्धित उद्योगों के विस्तार में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

मत्स्य सेल लाइनों के उपयोग

मत्स्य सेल लाइनें देश में मात्स्यिकी के विकास की दिशा में की जा रही विषाणु विज्ञान, विष विज्ञान एवं ट्रान्सजेनिक मत्स्य उत्पादन सम्बन्धी शोध कार्यों में एक जैविक उपकरण की भाँति कार्य करती हैं। जिससे मछलियों के विविध अंगों जैसे पुच्छ पंख, आँखो, गलफड़ों, वृक्क, प्लीहा तथा हृदय की मांसपेशियों से सेल लाइनें स्थापित किये जाने सम्बन्धी प्रक्रिया विकसित की गयी है।

वर्तमान में लगभग 17 मत्स्य प्रजातियों के विभिन्न अंगों से सेल लाइनें विकसित कर उन्हें हिम परिरक्षित कर एन.बी.एफ.जी.आर., लखनऊ स्थित राष्ट्रीय मत्स्य सेल लाइन कोष में भण्डारित किया गया है जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर सक्रिय किया जा सकता है। इस कोष में देश के विभिन्न भागों में मत्स्य वैज्ञानिकों द्वारा विकसित की गयी मत्स्य सेल लाइनों को भण्डारित किया जा रहा है तथा आवश्यकता वाले शोध केन्द्रों को उनकी माँग के अनुसार सेल लाइनों की आपूर्ति भी की जा रही है। निम्नलिखित कार्यों में इनका उपयोग महत्वपूर्ण है :–

1. **जलकृषि के विकास में**– मत्स्य सेल लाइनों का प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है जिसके कारण विगत वर्षों में मत्स्य प्रजातियों के विभिन्न अंगों जैसे पखने, अण्डाशय, हृदय, यकृत, आँख की मांस

पेशियों, मस्तिष्क, प्लीहा, कशेरूकाओं तथा त्वचा आदि से सेल लाइन विकसित करने तथा उनके सत्यापन सम्बन्धी शोध कार्य में तेजी आयी है। इसी क्रम में भारत सरकार के जैव प्रौद्योगिकी विभाग के सहयोग से राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ में एक राष्ट्रीय मत्स्य सेल लाइन कोष की स्थापना की गयी है।

2. **रोग निदान प्रक्रियाओं में**— संवर्धित कोशिकाओं का नैदानिक प्रक्रियाओं में बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है। ये मत्स्यागों से निष्कर्षित घातक विषाणुओं की तेजी से बढ़ती संख्या तथा उनसे अन्य सम्बन्धित प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिए हैं तथा मछलियों में रिकेटसियल रोग उत्पन्न करने वाले कारकों का अध्ययन कर उनके नियन्त्रण सम्बन्धी ज्ञान के विकास में सहायक हैं। मछलियों में आनुवंशिक विकृति तथा उनकी अभिव्यक्ति स्वरूप होने वाले रोगों के निदान तथा उनके उपचार हेतु डी.एन.ए. प्रतिचित्रण तथा उनमें सुधार सम्बन्धी प्रक्रियाओं में भी ये कोशिकायें सहायक हैं।

3. **शिक्षण कार्य में**— कोशिकाओं के संवर्धन द्वारा कोशिका विज्ञान के विभिन्न उप विषयों जैसे प्रजाति विशेष के गुणसूत्रों के अध्ययन तथा उनका तुलनात्मक अध्ययन, कोशिका कार्यिकी, कोशिका विभाजन, कोशिकीय श्वसन, कोशिकीय उपापचय एवं विषविज्ञान, आनुवंशिक विनियमन तथा कैंसर जनन इत्यादि का प्रायोगिक एवं विस्तृत ज्ञान ऐसी शिक्षण संस्थाओं में दिया जा सकता है, जहाँ कोशिका संवर्धन हेतु विशिष्ट इंक्यूबेटर सहित अध्ययन सम्बन्धी अन्य मूलभूत सुविधायें मौजूद हैं। इस प्रकार कोशिका संवर्धन की तकनीक द्वारा विद्यार्थियों को जटिल कोशिकीय प्रक्रिया अत्यन्त सुगम एवं प्रभावशाली ढंग से समझायी जा सकती हैं।

4. **मात्स्यिकी जैवप्रौद्योगिकी सम्बन्धी शोध में**— जलकृषि में जैवप्रौद्योगिकी का बढ़ता महत्व सर्वविदित है। विगत वर्षों में इसके प्रयोग द्वारा भोज्य जलीय जीवों के उत्पादन में हुई वृद्धि का श्रेय जैव प्रौद्योगिकी की प्रचलित तकनीकों जैसे गुणसूत्र हेरफेर एवं हारमोनों के उपचार द्वारा बंदी प्रजनन को दिया जा सकता है। कोशिका संवर्धन द्वारा गुणसूत्रों के हेरफेर सम्बन्धी प्रयोग सुगमता एवं अनन्य संभावनाओं के साथ किया जा सकता है जिससे अब तक मात्स्यिकी क्षेत्र विकसित ट्रिपलॉयड, टेट्राप्लॉयड, हैपलॉयड, गाइनोजेनेटिक एवं एण्ड्रोजेनिटिक जीन से आगे भी कुछ ऐसा शोध करने की प्रेरणा मिलेगी जिससे देश के जलीय खाद्य उत्पादन में क्रान्ति लाने वाले जीवों का विकास किया जा सके।

वर्तमान में राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ स्थित 'राष्ट्रीय मत्स्य सेल लाइन कोष' (एन.आर.एफ.सी.) में 33 मत्स्य सेल लाइनों का रख रखाव किया जा रहा है। इनमें से कुछ एन.आर.एफ.सी. में कार्यरत वैज्ञानिकों एवं शोध छात्रों द्वारा विकसित की गयी हैं, जबकि कुछ सेल लाइनें देश के अन्य सम्बन्धित संस्थानों यथा समुद्री मात्स्यिकीय अनुसंधान, कोच्चि तथा केन्द्रीय संस्थान, वेल्लौर स्थित थिरूवल्लावर विश्वविद्यालय आदि से यहाँ उचित रखरखाव हेतु प्रस्तुत की गयी है। यहाँ इन सेल लाइनों के सामान्य रखरखाव सम्बन्धी गतिविधियों के साथ–साथ उनकी उचित गुणवत्ता को सुनिश्चित करने हेतु उनमें निरन्तर कवक, जीवाणु अथवा माइकोप्लाज्मा के संक्रमण की जाँच की जाती रहती है। सेल लाइनों पर देश में कार्यरत वैज्ञानिक समुदाय की हर सम्भव सहायता के लिए राष्ट्रीय मत्स्य सेल लाइन भण्डार (एन.आर.एफ. सी.) की वेबसाइट शीघ्र ही कार्य करने लगेगी जिसमें यहाँ उपस्थित समस्त सेल लाइनों के विवरण के साथ–साथ मत्स्य सेल लाइनों को यहाँ भण्डारित करने अथवा आवश्यकतानुसार यहाँ से उन्हें प्राप्त करने सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध होंगी।

मीठे जल की छोटी देशज मछलियाँ : महत्व, संरक्षण एवं उपयोग

यू.के. सरकार, अखिलेश कुमार मिश्र, प्रवीन अग्निहोत्री, शैलेश कुमार मिश्र एवं अमर पाल

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

भारत 17 विशाल जैवविविधता वाले क्षेत्रों में से एक है, जिसमें यह उत्तरी मैदानों की हिमालयी श्रृखंला, पूर्वी घाट के लम्बे हिस्सों तथा पश्चिमी घाटों तक विश्व के जैविक संसाधनों में अपना योगदान दे रहा है। मछली एक शीत रक्त प्राणी है जोकि जीवन पर्यन्त श्वसन हेतु अपने गिल्स पर निर्भर है एवं सदैव पानी में रहती है। रा.मा.अ.सं.ब्यूरो द्वारा सूचीकृत 2352 स्वदेशी पखने वाली मछलियों में 871 मीठे जल, 113 खारे पानी की और 1368 समुद्री पानी की प्रजातियाँ हैं। छोटी स्वदेशी जलीय मछली अपने जीवन काल में 25–30 से. मी. तक लम्बाई में बढ़ती रहती हैं। इनका वास नदी और उसकी सहायक नदियां, बाढ़ में मैदानी क्षेत्रों, तालाबों और टैंकों, झीलों, झरनों, गीले मैदानी क्षेत्रों और धान की खेती वाले क्षेत्रों में है। भारत की ग्रामीण जनता स्वदेशी मछली की जातियों पर बहुत ज्यादा निर्भर रहती हैं जल कृषि को बढ़ाने में, पौष्टिकता, कृत्रिम प्रजनन, आजीविका की सुरक्षा तथा मत्स्य संरक्षण आदि विषयों पर बहुत अधिक ध्यान देने की आवश्यकता हैं। प्रदूषण, जल घटाव, अत्यधिक जैव विनाश, तलछटीकरण, प्रवाह पृथक्कीकरण, रोग एवं विदेशी मछलियों के आने के कारण स्वदेशी मछलियाँ संकट के कगार पर हैं। संरक्षण एवं प्रबंधन के लिये एक सुदृढ़ रूपरेखा की नितांत आवश्कता है। प्रस्तुत लेख भारत की छोटी मछलियों की अप्रयुक्त क्षमताओं एवं उनके टिकाऊ संरक्षण सम्बन्धी व्यापक प्रबंधों, जलकृषि, पौष्टिकता एवं आजीविका की सुरक्षा की संभावनाओं सम्बन्धी चुनौतीपूर्ण विषयों पर भविष्य की रणनीति पर प्रकाश डालता हैं।

मत्स्य जैवविविधता, स्थिति एवं महत्व

भारत में, रा.मा.अ.सं. ब्यूरो के द्वारा सूचीकृत 765 स्वदेशी मीठे जल की मछलियों में 450 छोटी मछलियों की प्रजातियां हैं। छोटी जलीय मछलियों की सर्वाधिक जैवविविधता पूर्वोतर राज्यों तत्पश्चात् पश्चिमी घाट और केन्द्रीय भारत में हैं। इनकी 25 प्रतिशत प्रजातियां (104) खाद्य एवं व्यापारिक महत्व की हैं, 62 जातियां खाद्य मछलियों के रूप में जबकि 42 सजावटी मछली के रूप में महत्पूर्ण है। इनमें से 57 मछलियां छोटी स्वदेशी मछलियों के वर्ग में रखी जा सकती हैं, जो कि 25–30 से.मी. तक बढ़ती है। छोटी मछलियां भारत के ग्रामीण समुदायों की आजीविका एवं पौष्टिक सुरक्षा को बनाये रखने में उल्लेखनीय योगदान देती हैं, जोकि हमारे ग्रामीण समुदायों के परम्परागत जीवन शैली का अभिन्न अंग बन गई हैं।

कुछ प्रजातियां जैसे 'मोला' अथवा 'जलंगा' के नाम से जानी जाने वाली *'एम्बलीफैरिंजींडान मोला'*, 'गरडा' अथवा 'ढेला' के नाम से जानी जाने वाली *'ओस्टिब्रामा कोटियों कोटियों'* व 'डेरिकाना' के नाम से जानी जाने वाली विटामिन और सूक्ष्म पोष्क खनिज तत्वों से युक्त हैं। बांग्लादेश और कम्बोडिया के अध्ययनों से पता चला है कि उत्पादन के मौसम में 50–80% छोटी स्वदेशी मछलियों का अधिकतम उपभोग किया जाता है। 'डारकिना' *(इसोमस डेनरिकस)* मछली में अत्यधिक आयरन होता हैं, जबकि 'मोला' अथवा 'जलंगा' में

'सिल्वर कार्प' और 'रोहू' की अपेक्षा 3 गुना अधिक कैल्सियम और 50 गुना अधिक विटामिन होता हैं। अध्ययनों की समीक्षा से पता चलता है कि भारत में छोटी देशी मछलियों के उपभोग की स्थिति के बारे में जानकारी बहुत सीमित हैं। छोटे पैमाने की जलकृषि में 'मोला' अथवा 'जलंगा', पुन्टियस सोफोर, 'बाटा' तथा 'चपरा' इत्यादि प्रमुख देशी मछलियां हैं। छोटी मछलियों के कृत्रिम प्रजनन को एनबीएफजीआर की एनएआईपी परियोजना के माध्यम से सफलतापूर्वक सम्पन्न किया गया हैं।

सशक्त कृषि योग्य देशज छोटी मछलियां

छोटी स्वदेशी मछलियों की ज्यादा मांग होने के कारण, मीठे पानी में जलकृषि की पैदावार को और बढ़ाया जा सकता है। कुछ प्रजातियों जैसे मोला, *नोटोपटेरस–नोटोपटेरस, पुंटियस सराना, पुन्टियस टिक्टो, सिरिहइनस रेबा, सलमोस्टोमा बेकैला, नेंड्स नेंड्स, ऐनाबस टेस्टुडाइनिस, इसोमस डेनरिकस, पुंटियस चोला, ग्लासोगोबियस गाइयूरिस, डेनियो डेवेरियो और चंदा नामा,* आदि प्रजातियों को जलकृषि विविधीकरण में सम्मिलित करके सम्पूर्ण उपज को बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रजातियों जैसे *लेबियो गोनियस, लेबियो बाटा, लेबियो बोगट, लेबियो फिंब्रिएटस, बारबोडस कारनैटिकस, पुंटियस पलचिलस, पुंटियस कोलस और सिरिहइनस सिरोंसा* को भी इसमें सम्मिलित कर सकते हैं। इनमें से जगंली बीज संग्रह करके अधिकांश प्रजातियां अत्यन्त सूक्ष्म पैमाने पर ही संवर्धित की जा रही है। वायु में सांस लेने वाली और अवायुवीय अवस्था में सांस लेन वाली प्रजातियां जैसे– *चन्ना मारूलियस, चन्ना स्ट्रियेटस, चन्ना पंकटेटस, चन्ना गचुआ, चन्ना ब्लेहरी, चन्ना औरन्टीमैकुलेटा* तथा *चन्ना स्टीवार्टी* को बड़े पैमाने पर जलकृषि हेतु अभी तक उपयोग नहीं किया गया है। वायु में सांस लेने वाली *(क्लेरियस बटरैकस* तथा *हेटरोस्नास्टिस फासिलिस)* तथा अवायुवीय अवस्था में श्वसन करने वाली मछलियों *(मिस्टस सिंगाला, मिस्टस ओर, होराबैगरस ब्रेकीसोमा, नोटोप्टीरस, ओमपोक पाब्दा, ओमपोक पाबो* तथा *ऐलिया कोलिया)* के उत्पादन को बढ़ाने के लिए उपलब्ध तकनीकी विधियों को प्रचारित एवं विस्तारित करने की आवश्यकता हैं। सशक्त कृषि योग्य, खाद्य एवं सजावटी मछलियों एवं मूल्यवर्धित उत्पादों के विकास को उपयोगी बनाने के लिये शोध एवं सरकार द्वारा नीतिगत समर्थन की भी आवश्यकता हैं।

खतरे

वर्तमान समय में मीठे जलीय स्रोतों का पर्यावरण बहुत गम्भीर समस्याओं से जूझ रहा हैं जोकि भारत की जैवविविधता एवं परिस्थितिकी स्थिरता की दृष्टि से उचित नहीं है। यद्यपि हाल के वर्षो में, इस समस्या के समाधान के लिये अनेक रणनीतियां एवं प्राथमिकतायें प्रस्तावित की गयी हैं, फिर भी इस समस्या का हल सन्तोषजनक ढंग से नहीं हो पा रहा है। हमारे देश की छोटी मछलियों की संख्या में ह्रास का प्रमुख कारण उनके आवासों का नाश, बहुत छोटे आकर के जालों का उपयोग, जल की कमी, कीटनाशकों का उपयोग, घरेलू एवं औद्योगिक प्रदूषण, जल निकायों में सिल्ट का जमा होना एवं विदेशी प्रजातियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि का होना हैं। राष्ट्र की इस अमूल्य जैव सम्पदा के संरक्षण हेतु इन समस्याओं का त्वरित निदान आवश्यक है।

छोटी देशी मछलियों का संरक्षण

इनके संरक्षण और प्रबंधन के लिये हमें मत्स्य प्रजातियों के बाह्य आकार एवं आण्विक चिन्हकों के

आधार पर पहचान की उपलब्धता की आवश्यकता हैं, साथ ही साथ उनकी वर्तमान संरक्षण स्थिति का सटीक आंकलन किया जाना चाहिए। आई.यू.सी.एन. मानकों के अनुसार राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा सूचीकृत 104 महत्वपूर्ण छोटी देशज मत्स्य प्रजातियों में से 6 प्रजातियां 'इनडैंजर्ड' 16 प्रजातियां 'वलनरेबल' श्रेणी में अधिसूचित हैं जिनके संरक्षण एवं विस्तार हेतु पूर्ण समर्पण के साथ योजनाबद्ध तरीके से प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। इन मत्स्य प्रजातियों का संरक्षण पारिस्थितिक एवं पोषणीय सन्तुलन बनाये रखने हेतु आवश्यक है जो अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक–आर्थिक सन्तुलन को भी बनाये रखने का कार्य करेगा। राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा चलायी जा रही विभिन्न परियोजनाओं में इस दिशा में सकारात्मक प्रयास किये जा रहे हैं। ऐसी मत्स्य प्रजातियों के संरक्षण एवं विस्तार हेतु निम्नलिखित सुझाव एवं रणनीतियां अपनाये जाने की आवश्यकता हैः–

1. व्यापक शोध एवं छोटी मछलियों के पालन में व्यापक बदलाव, विविधीकरण, प्रजनन का विस्तार एवं मत्स्य पालन को जीविका तथा पौष्टिक सुरक्षा के रूप में अपनाया जाये।
2. छोटी मत्स्य प्रजातियों के पालन विस्तार सम्बन्धी विषयों पर व्यापक शोध जिससे विधियों में सुधार लाया जा सके तथा ऐसे मत्स्य पालन को जीविका तथा पौष्टिक सुरक्षा से जोड़ कर नवीनतम परिप्रेक्ष्य में लिया जाये।
3. अत्यन्त छोटी एवं किशोरावस्था वाली मछलियों के अंधाधुंध एवं विनाशकारी दोहन पर रोक लगाने वाले नियमों एव विधियों को कड़ाई से लागू किया जाये।
4. मत्स्य आनुवंशिक संसाधनों तथा नव अन्वेषित मत्स्य प्रजातियों के संग्रहण–भण्डार स्थापित करना जिसमें उनका पंजीकरण कर उपलब्ध अद्यतन संख्या समय समय पर अधिसूचित की जा जाये।
5. मत्स्य अभ्यारण्यों का विकास भी उनके स्थानीय परिवेश को सुरक्षित करने में उपयोगी होगा अतः इसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
6. मत्स्य पालकों के मध्य छोटी मछलियों के संरक्षण के, ज्ञान के प्रभावी सम्प्रेषण हेतु वैज्ञानिकों तथा सम्बन्धित अधिकारियों के द्वारा एक जनजागरण अभियान चलाया जाये।
7. विदेशी मत्स्य प्रजातियों के प्रवेश पर न्याय संगत रोक द्वारा जलीय वातावरण को प्रदूषण मुक्त रखने हेतु विशेष प्रयास किये जाये क्योंकि छोटी मछलियों के विकास में जलीय वातावरण की अनन्य महत्वपूर्ण भूमिका है।

कार्प मछलियों का लवण प्रभावित मृदा एवं जल वाले तालाब में पालन की समस्याएं एवं समाधान–भूमिगत जल निकास प्रणाली प्रक्षेत्र के मद्देनजर

शरद कुमार सिंह, सत्येन्द्र कुमार, एस.के. कामरा एवं गुरबचन सिंह

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132 001 (हरियाणा)

भारत के शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों में विभिन्न फसलों की उपज, भूमि के लवणीयता में परिवर्तन होने से निम्न स्तर की देखी गयी है। लवण प्रभावित भूमि में कार्बनिक पदार्थ तथा वनस्पति अत्याधिक कम मात्रा में पाये जाने के कारण मिट्टी की उपजाऊ क्षमता अत्याधिक कम होती है। नाइट्रोजन का भी इस प्रकार की मिट्टी में अभाव रहता है। मृदा में लवणों के प्रभाव के कारण, उपलब्ध नाइट्रोजन गैस में विखंडित हो जाती है। इस कारणवश NH_4/NO_3-N उर्वरकों का उपयोग, इस प्रकार की भूमि में अधिक लाभदायक है। अतः नाइट्रोजन **वोलटाइजेशन** रोकने के लिए, नाइट्रोजन खाद को मिट्टी में अधिक गहराई तक मिलाना अधिक लाभप्रद होता है। भारत में विभिन्न प्रकार की जलवायुगत समस्याओं के कारण मृदा एवं जल लवणता मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, महाराष्ट्र एवं गुजरात आदि प्रदेशों में पायी गयी है। विभिन्न प्रकार की लवणीय मृदा में लवणयुक्त मृदा, समुद्र तटीय मृदा, लवणीय क्षारीय मृदा, अम्ल सल्फेट मृदा, नदीय–समुद्र, मुहाना लवणीय मृदा आदि आती है। भारत में कुल लवणीय जल क्षेत्र 1,93,438 वर्ग किलो मीटर है। जिसमें उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, हरियाणा के विभिन्न जिलों के जल संसाधनों में विद्युत चालकता 4 डेसी सीमन प्रति मीटर से ऊपर पायी गयी। भूमिगत जल में लवणता विभिन्न प्रकार की कारकों की वजह से होती है जैसे सकल संतुलन वार्षिक वाष्पीकरण, वर्षा और बहाव आदि से बिगड़ा है। स्थानीय चट्टानों के मौसमी एवं घुलनशीलता बदलाव के कारण लवणों का नाले एवं वर्षा जल बहिश्राव में समावेश हुआ है। भूमिगत जल का प्राचीन समय से लवणग्रस्त होना भी एक कारण है। हरियाणा में 5,00,000 हेक्टेयर भूमि जलमग्नता एवं लवणता से प्रभावित है। इस प्रकार की भूमि हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, महाराष्ट्र, कर्नाटक आदि राज्यों में अधिक है तथा इसे **जलोढ़** लवणीय क्षेत्र भी कहते हैं। लवणीय मृदाओं को आमतौर पर सेम/लोनी या लोणी कहा जाता है जिनके संतृप्त घोल की विद्युत चालकता 4 डेसी सीमन प्रतिमीटर से अधिक, मृदा का पीएच मान 8.2 से कम तथा विनिमय योग्य सोडियम की मात्रा 15 प्रतिशत से कम होती है। इस प्रकार की लवणग्रस्त भूमि में सोडियम, कैल्शियम तथा मैग्नीशियम एवं उनके क्लोराइड एवं सल्फेट अधिक मात्रा में पाये जाते हैं, जो जल में घुलनशील होते हैं जिसके कारण इस भूमि में पौधों का विकास अवरुद्ध होता है और उत्पादन कम होता है। लवणीय भूमि प्रायः जल भराव की समस्या से भी ग्रसित होती है जिसे जलग्रस्त लवणीय भूमि कहते हैं। इसी प्रकार की लवणीय भूमि का सुधार भूमिगत जल निकास प्रणाली लगाकर किया जाता है। वृहद प्रक्षेत्र में 0.2 हेक्टेयर क्षेत्र के बने तालाब (N-29º14'30.66", E-76º36'55.49") में कार्प

मछलियों का पालन किया गया। जिसके अनुभवों की सविस्तार चर्चा प्रस्तुत शोध पत्र में कृषक सहभागिता के मद्देनजर की जा रही है।

तालाब निर्माण एवं तैयारी

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल से लगभग 70 कि.मी. पर सोनीपत जिला हरियाणा के जलाक्रान्त लवणीय मृदा वृहद क्षेत्र के भूमिगत जल निकास प्रणाली प्रक्षेत्र अन्तर्गत एक कृषक मनोज कुमार जागसी गाँव के प्रक्षेत्र पर बने नवीन तालाब (0.2 हे.) में मत्स्यपालन का अभिनव प्रयोग वर्ष 2009–2010 के दौरान किया गया। जिसके लिए सर्वप्रथम तालाब के सभी क्षेत्रों का मृदा नमूना एकत्रित किया गया, तथा प्रयोगशाला में उसकी जांच भी की गयी। तालाब की साफ–सफाई मानक विधियों के अनुसार की गई। तालाब की गहराई बन्ध से 2 मीटर पायी गई। तालाब का आकार 60×35 मीटर × 1.5 मीटर (जल गहराई) पाया गया। बन्ध की चारों तरफ ऊपर चौड़ाई 0.5–0.75 मीटर ही मापी गयी। तालाब प्रबन्धन के मद्देनजर गोबर 10 टन/प्रति हे. की दर से 25 प्रतिशत हिस्सा मत्स्य बीज संग्रह पूर्व तालाब में डाला गया। प्रति माह 10 कि.ग्रा. डी.ए.पी. का प्रयोग तालाब में प्राकृतिक भोजन बढ़ोतरी हेतु किया गया।

मत्स्य बीज संग्रह और तालाब प्रबन्धन

मत्स्य प्रजाति संग्रह

भारतीय प्रमुख कार्प एवं विदेशी कार्प की अंगुलिकाओं (5.10 ग्राम) का संग्रह 10 हजार प्रति हे. की दर से रोहतक के निजी हैचरी से प्राप्त कर किया गया। प्रजातियों का अनुपात कतला, 20 प्रतिशत, रोहू 40 प्रतिशत, मृगल, 30 प्रतिशत तथा कामनकार्प, 10 प्रतिशत की दर से किया गया।

तालाब क्षेत्र का मृदा का मान

मान	तालाब का सीमांत क्षेत्र	तालाब नितल प्रक्षेत्र
मृदा पी.एच.	7.92–8.30	7.84–8.0
विद्युत चालकता (डेसी सीमन प्रति मीटर)	0.29–0.95	0.35–0.85
कार्बनिक अंश (प्रतिशत)	0.16–0.24	0.19–0.36

मत्स्य पालन के समय तालाब का भौतिक–रासायनिक–जैविक जलीय मान

मान	तालाब
जल गहराई (मी.)	1.25 (1.0–1.75 मी.)
पारदर्शिता (से.मी.)	18.0–26.0
जल तापमान सेल्सियस (अधिकतम)	18.0–36.0
पी. एच. मान	7.0–9.0
घुलनशील ऑक्सीजन (मि.ग्रा. / ली.)	3.3–6.0
स्वतन्त्र कार्बनडाइआक्साइड (मि.ग्रा. / ली.)	0.0–6.0
क्षारीयता (मि.ग्रा. / लीटर)	150–200
कठोरता (मि.ग्रा. / लीटर)	120–135
घुलनशील कार्बनिक अंश (मि.ग्रा. / लीटर)	0.4–0.6
वैद्युत चालकता (डेसी सीमन प्रति मीटर)	0.5–6.0 (2.5 औसत)
प्लवक उत्पादकता (मि.ली. / 100लीटर जल)	0.5–1.5

सम्पूरक आहार

मछलियों को प्रति मास तालाब में मौजूद कुल अनुमानित मत्स्य भार के अनुसार धान कन एवं सरसों की खली समान अनुपात (1:1) को 1–5 प्रतिशत की दर से दिया गया। उनकी वृद्धि का माप समय–समय पर किया गया।

तालाब मत्स्य पालन का विवरण

मद	तालाब संचालन मान
प्रयोग अवधि	8 महीना
संग्रहित अंगुलिकाओं की संख्या	2000
प्रारम्भिक माप (ग्रा.)	5
प्रजाति संग्रह अनुपात (प्रतिशत)	कतला–20, रोहू–40, मृगल–30 कामन कार्प –10 प्रतिशत
मत्स्य वृद्धि (ग्रा.)	कतला–550 ग्रा., रोहू–425, मृगल–350 कामन कार्प–400
मत्स्य औसत वजन(ग्रा.)	ग्रा.
अतिजीवन आँकलन(प्रतिशत)	500
प्रयोग पश्चात मत्स्य उत्पादन (कि.ग्रा.)	50
मत्स्य उत्पादन (टन/हे./8महीना)	500
आँकलित मत्स्य उत्पादन (टन/हे./वर्ष)	2.5
	3.75

मत्स्य पालन में जल आपूर्ति

मत्स्य पालन के समय खारे एवं मीठे जल का प्रयोग संयुक्त रूप से किया गया जिसमें हरियाणा सरकार के **(HOPP)** परियोजना द्वारा बिछाये गये भूमिगत पाइपों से निष्कासित जल का **स्वैम्प बेल** में एकत्रीकरण पश्चात तालाब में खाराजल आपूर्ति के साथ वर्षा जल एकत्रित जल का प्रयोग हुआ। भूमिगत जल निकास प्रणाली द्वारा निष्कासित पानी का खारापन (2.0–6.0 डेसी सीमन प्रति मीटर) मापा गया। प्रयोग के दौरान तालाब जल का औसत मान 2.5 डेसी सीमन 1 मीटर पाया गया तथा वर्षा जल मिश्रण पश्चात अन्तराल 0.5–6.0 डेसी सीमन/मीटर रहा जिसमें ग्रीष्मकाल में खारापन अधिकतम पाया गया।

मत्स्यपालन के दौरान अनुभव की गयी कठिनाइयाँ

तालाब बन्ध का जलाक्रांत क्षेत्रों वाले तालाब में संकरा होना एक प्रमुख बाधा के रूप में प्रकाश में आया क्योंकि वृहद वर्षा के कारण तालाब के चारों तरफ धान के खेतों में जल भराव होने से तालाब परिमाप के चारों तरफ के बन्धों में केकड़ों द्वारा छिद्र करने से दोनों तरफ से जलप्लावन की समस्या देखी गयी जिससे मछलियों का बाहर के क्षेत्रों में पलायन पाया गया एवं धान खेतों से निम्न तृणमीनों का तालाब अन्तर्गत संग्रहण पाया गया। इस प्रकार की समस्या से एक बात और प्रकाश में आती है कि धान के खेतों में पेस्टीसाइड के प्रयोग के कारण तालाब में मछलियों हेतु खतरे का कारण बन सकता है। इस प्रकार के क्षेत्रों में ग्रास कार्प मछली का पालन नहीं किया जा सकता क्योंकि जलप्लावन समस्या से तालाबों से ग्रास कार्प धान खेतों में आकर धान की फसल को काफी नुकसान कर सकती है।

मछलियों का उत्पादन

निम्न लवणीय मृदा एवं जलयुक्त जलकृषि प्रौद्योगिकी में 3750 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष की दर से कार्प मछलियों का उत्पादन लिया गया है।

लवण प्रभावित भूमि के तालाबों में जलकृषि की अन्य कठिनाइयाँ

विभिन्न जलवायुगत एवं सामाजिक समस्याओं जैसे निम्न मानसून वर्षा, उच्च शीत एवं ग्रीष्मकाल, क्षेत्र में असमान विद्युत आपूर्ति, लवणीय अपजल का डिसपोजल तथा लवणीय जल में मछलीपन का कम तकनीकी ज्ञान जल कृषि को लोकप्रिय बनाने में प्रमुख बाधाएं हैं, जिससे ग्रीष्म काल में मत्स्यपालन समस्याप्रद है।

1. इस प्रकार की भूमि में भूमिगत जल निकास प्रणाली में खामियों की चजह से निरंतर जल की आपूर्ति तालाबों में नहीं हो पाती है।
2. किसानों की खेती जोत छोटा तथा छितरा हुआ है।
3. जल निकास प्रणाली का खर्चीलापन होना।
4. किसानों में मत्स्यपालन के प्रति जागरुकता की कमी एवं अशिक्षा होना।
5. स्वैम्प से डीजल पम्प द्वारा जल निकासी हेतु सामूहिक कृषकों में आपसी तालमेल न होने से कठिनाई है।
6. डीजल का मंहगा होना भी एक समस्या है।

मत्स्यपालन के विकास हेतु आवश्यक कदम

उपरोक्त के मद्देनजर कृषकों या उनकी समितियों को सरकार द्वारा छोटे एवं मझोले (1–4 **एचपी.**) **सौरऊर्जा** पम्प लगाने हेतु प्रोत्साहन एवं वित्तीय सहायता प्रदान करना या आवश्यकतानुसार गैर परम्परागत **वायुमील आधारित जल पम्पों** की स्थापना सरकारी योजना के माध्यम निष्कासित जल का **स्वैम्प बेल** में एकत्रीकरण पश्चात तालाब में खाराजल आपूर्ति सर्वथा यथोचित प्रतीत होता है क्योंकि हरियाणा के इस प्रकार के क्षेत्र में वर्षभर 2–**10** किमी/घंटा की रफ्तार से औसतन हवायें चलती हैं जो कभी–कभी 15–20 किमी घंटा की दर से पहुँच जाती हैं। तालाब बन्धों की चौड़ाई हर दृष्टि से 4–5 मीटर के ऊपर रखना श्रेयष्कर होगा। उस पर अन्य खेती भी की जा सकती है। इस अध्ययन से ज्ञात होता है कि लवणग्रस्त मृदा आधारित तालाबों में जलकृषि एवं उसके आस–पास के क्षेत्रों में कृषि प्रणाली पद्धति समग्र फसलोत्पादन के साथ उपयोगी हो सकता है। वैज्ञानिकों द्वारा प्राप्त उपलब्धियों को कृषकों के प्रक्षेत्र में विभिन्न प्रकार की सरकारी योजनाओं को लोकप्रिय करके आसानी से व्यापक बनाया जा सकता है।

मत्स्य पालकों को सुझाव

1. तालाब बनाने से पहले मिट्टी और पानी की गुणवत्ता की जाँच अवश्य कराये।
2. अच्छे उत्पादन के लिए मछलियों का चयन और उनके अंगुलिका संचय की संख्या और अनुपात पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
3. प्रतिमाह जाल चलाकर मछली की बढ़त देखना और आहार निर्धारण करना अति आवश्यक है साथ ही साथ बड़ी मछलियों को उचित बाजार भाव अनुसार आंशिक निकासी करना चाहिए।
4. बदली छाये मौसम में ताजा पानी ऊँचाई से डालना चाहिए ताकि वायुमंडल की आक्सीजन पानी में घुल जाए। इसके लिए उसी तालाब के पानी का भी उपयोग किया जा सकता है।

5. मछलियों में रोग बचाव हेतु उचित सावधानी बरतनी चाहिए। जिसके लिए जाल चलाने के पश्चात मछलियों को जाल के अंदर ही 3 मि.ग्रा. प्रतिलीटर पौटेशियम परमैगनेट के घोल से स्नान कराना चाहिए। सर्दियों में यह कार्य 3 प्रतिशत साधारण नमक के घोल से करना चाहिए।

6. वाष्पीकृत जल की भरपाई अतिरिक्त जल डालकर पूरा करना चाहिए। सर्दियों में भूमिगत जल आपूर्ति उपयोगी है।

7. मत्स्य तालाबों में शिशुमीन एवं अंगुलिकाओं को पक्षी गण क्षति पहुंचाते है अतः प्रारम्भिक अवस्था में तालाब के ऊपर नाइलान के धागे या प्लास्टिक के चमकीले फीते या रस्सियाँ बांधनी चाहिए।

8. चोरों से बचने के लिए तालाब में झाड़ीदार पेड़ शाखाएँ या बाँस डालना चाहिए।

मछलियों में टीकाकरण

रंजना श्रीवास्तव एवं पीयूष पुनिया

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

भूमिका

जिस प्रकार मनुष्य को नित नये रोग सताते है, उसी प्रकार मासूम मछलियाँ भी निरन्तर किसी न किसी रोग से ग्रस्त रहती है। इन रोगों के इलाज और रोकथाम के तरीके भी वही होते है जो हम अपनाते है जैसे कि दवायें, एन्टीबायोटिक्स एवं टीके लगवाना। मनुष्य में देखा गया है कि जहाँ दवायें असर नहीं करती है वहीं टीके लगवाना बीमारी से बचने का एक अचूक तरीका होता है जैसे कि टी.बी. और पोलियो आदि। ठीक इसी तरह मछलियों में भी जीवाणु जनित रोगों से बचाने के लिए एक कारगर उपाय है टीकाकरण। मछलियों में रोगाणुओं से लड़ने के लिए अन्तर्निहित प्रतिरक्षण क्षमता होती है। जो उन्हें बीमारियों से बचाती है। यह प्रतिरक्षण शक्ति या तो एक बार बीमार होने पर रोगाणुओं के मछली के शरीर में प्रवेश के फलस्वरूप या टीकाकरण द्वारा विकसित होती है। कोई भी वाह्य पदार्थ जो उसके प्राप्तकर्ता को किसी विशेष रोग से बचने के लिए प्रतिरक्षण शक्ति प्रदान करता है, टीका कहा जा सकता है।

किसी भी जीव में रोगाणुओं के प्राकृतिक अतिक्रमण से पूर्व टीके द्वारा प्रतिरक्षण शक्ति प्रदान करना पहली नजर में बहुत सटीक एवं सही उपाय लगता है परन्तु इसको क्रियान्वित करना एक जटिल कार्य है। आइयें पहले समझे कि टीके के द्वारा प्रतिरक्षण तंत्र किस प्रकार प्रभावित होता है।

विशेष प्रतिरक्षण तंत्र

टीके द्वारा प्रतिरक्षण शक्ति का विकास दो स्तंभ पर टिका होता हैं पहले स्तंभ को 'हयूमोरल' प्रतिरक्षण तथा दूसरे को कोशिका मध्यस्थता द्वारा विकसित प्रतिरक्षण कहते है। प्रतिरक्षण शक्ति का विकास एक सुनियोजित रणनीति के तहत होता है। इस कार्य में शरीर की कुछ विशिष्ट कोशिकायें परस्पर सहयोग एवं क्रमबद्ध शैली द्वारा मुख्य भूमिका निभाती है। इन कोशिकाओं में प्रमुख है लिम्फोसाइट्स जो कि शरीर में दो प्रकार की ('टी' एवं 'बी' लिम्फोसाइट्स) होती है।

(क) ह्यूमोरल प्रतिरक्षण

सूक्ष्मजीवियों की ऊपरी सतह पर कई एंटीजेन होते है। इन एंटीजेन को पहचानने का काम, बी. सेल तथा एक विशिष्ट प्रकार के टी. सेल, टी. हेल्पर सेल की सतह पर मौजूद 'विशिष्ट एंटीनजेन रिसेप्टर' द्वारा संपन्न होता है। एंटीजेन से संपर्क होने के बाद बी. सेल, दो प्रकार के सेल में विभाजित हो जाता है पहले प्रकार का सेल 'प्लाज़्मा सेल' कहलाता है। जो तुरन्त एंटीजेन के लिए 'विशेष एंटीबॉडी' उत्पन्न करता है। दूसरे प्रकार का सेल 'मेमोरी सेल' कहलाता है, जो वास्तविक संक्रमण के बाद उत्पन्न होने वाले 'एंटीजेन' के लिए एंटीबॉडी बनाने में सक्षम 'प्लाज़्मा सेल' को उत्पन्न करने की शक्ति रखता हैं एंटीजेन से संपर्क होने के बाद 'टी. हेल्पर सेल', सदा बहार 'हेल्पर मेमोरी सेल' में परिवर्तित हो जाता है, जो वास्तविक संक्रमण के

बाद होने वाले 'एंटीजेन' के लिए 'एंटीबॉडी' बनाने के लिए बी. सेल की सहायता करता है।

'मेमोरी सेल' की योग्यता होती है, संक्रमण होने की दशा में त्वरित गति से काम करते हुए बीमारी के लिए 'प्रतिरोध' उत्पन्न करना।

(ख) कोशिका–मध्यस्थता द्वारा विकसित प्रतिरक्षण

एंटीजेन से संपर्क होने के बाद 'टी.सेल', तीन प्रकार के सेल में विभाजित हो जाता है :

(क) किलर सेल

(ख) लिम्फोसाइट उत्पन्न करने वाले सेल

(ग) सप्रेसर सेल

इनमें से पहले दो प्रकार के सेल, ''मैक्रोफेजेज़ सेल'' को बहाल करके, सूक्ष्मजीवियों को पकड़कर और निगलकर, नष्ट करने का कार्य करते हैं।

मछलियों के टीके का मुख्य उद्देश्य है शरीर को विशिष्ट रोग से लड़ने के लिए प्रेरित करना और मछली को किसी रोग से बचाने के लिए जो टीका तैयार किया जाता है उसमें निम्न गुण होना आवश्यक है –

1. टीके में संबन्धित रोग से बचाने की पर्याप्त प्रतिरक्षण क्षमता होनी चाहिए।
2. जब मछली पूरी तरह बीमारी के रोगाणुओं से घिरी हो उस अवस्था में भी टीका रोग से उसकी रक्षा करें।
3. टीका बहुत लम्बे समय तक मछली को बीमारी से बचाए रखे।
4. बीमारी के रोगाणु के निकट संबन्धी सीरोटाइपस से भी मछली की रक्षा करें।
5. आसानी से मछली को टीका दिया जा सके। सबसे अच्छा है अगर खाने के साथ दे दें नहीं तो मछली को सूई द्वारा या टीके के घोल में डुबो कर या मछली पर टीके के रसायन छिड़ककर भी दे सकते है परन्तु ये ध्यान रखना चाहिए कि इससे मछली को कम से कम परेशानी हो।
6. टीका मछली के लिए संरक्षित होना चाहिए।
7. टीका बनाने में, उसका लाइसेन्स बनाने में और उसको मछली में पहुँचाने तक में खर्चा कम से कम हो।

मछली में टीकाकरण का पहला प्रयोग डफ ने 1942 में किया जिसमें उसने फ्यूरनक्लॉसिस बीमारी को रोकने के लिए इसके जीवाणु ऐरोमोनास सॉलमॉनिसिडा (मृत) को भोजन में मिलाकर ''कटथ्रोट ट्राउट'' मछली को खिलाया। 1940 से 1970 तक टीकाकरण पर बहुत कम ध्यान दिया गया और ये सोचा जाने लगा कि ''कीमोथैरापी'' ही हर दर्द की दवा है परन्तु ये धारणा निर्मूल साबित हुई और 1970 से एक बार फिर मछली को रोगों से बचाने के लिए लोगों में मछलियों के लिए टीके विकसित करने का शौक पैदा हुआ जो आज दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। नतीजा ये है कि आज अधिकांश जीवाणु जनित मत्स्य रोगों के लिए टीके उपलब्ध हैं (सारणी–1)।

सारणी 1: मत्स्य पालन में प्रयोग किये जाने वाले प्रमुख टीकों से सम्बन्धित जानकारी

व्यवसायिक नाम	एंटीजन	टीका के प्रकार	कम्पनी	मत्स्य जाति	अनुप्रयोग
बायोवाक्स 1150	यर्सिनिया रूकेरी	बैक्टरीन	आमफार्मा	ट्राउट/सालमन	डुबाना (इमरसन)
बायोवाक्स 1300	विब्रियो एनग्यूलेरियम विब्रियो आर्डेलेई	बैक्टरीन	आलफार्मा	ट्राउट/सालमन	डुबाना (इमरसन)
बयोजेक 1500	एरोमोनास सालमोनीसिडा	बैक्टरीन	आलफार्मा	ट्राउट/सालमन	इनजेक्सन
बायोजेक 1800	एरोमोनास सालमोनीसिडा विब्रियो एनग्यूलेरियम	बैक्टरीन	आलफार्मा	ट्राउट/सालमन	इनजेक्सन
	एरोमोनास सालमोनीसिडा विब्रियो एनग्यूलेरियम विब्रियो सालमोनीसिडा	बैक्टरीन	आलफार्मा	ट्राउट/सालमन	इनजेक्सन
आटोजेनस वैक्सिन	विभिन्न बैक्टीरियल एन्ऑीजन	बैक्टरीन	आलफार्मा	पोषित मत्स्य	डुबाना, इनजेक्सन, मुख द्वारा
नारवेक्स विब्रियोस	विब्रियो एनग्यूलेरियम	बैक्टरीन रीकाम्बिनेन्ट	इन्टरवेट	ट्राउट/सालमन	डुबाना (इमरसन), इनजेक्सन
	इनफैक्सियस पनक्रियेटिक निक्रोसिस वाइरस	इनफैक्सियस पनक्रियेटिक निक्रोसिस वाइरस प्रोटीन			
नारवेक्स प्रोटेक्ट	एरोमोनास सालमोनीसिडा विब्रियो एनग्यूलेरियम विब्रियो सालमोनीसिडा	बैक्टरीन	इनटरवेट	ट्राउट/सालमन	डुबाना (इमरसन), इनजेक्सन
फूरोजन	एरोमोनास सालमोनीसिडा	बैक्टरीन	आक्वाहेल्थ	ट्राउट/सालमन वोई कार्प	डुबाना (इमरसन), इनजेक्सन
फूरोजन 2	एरोमोनास सालमोनीसिडा	बैक्टरीन आयल एडजूवेन्ट	आक्वाहेल्थ	ट्राउट/सालमन	इनजेम्सन
लिपोजन ट्रीपल, लिपोजन फोर्ट	एरोमोनास सालमोनीसिडा विब्रियो एनग्यूलेरियम विब्रियो आर्डेलेई विब्रियो सालमोनीसिडा	बेक्टरीन, आयल एडजूवेन्ट	आक्वाहेल्थ	ट्राउट/सालमन	इनजेक्सन
इस्कोजन	इवार्डसियेला इक्टालुरी	इनकैप्सुलेटेड बैक्टरीन	आक्वाहेल्थ	कैटफिश	मुख द्वारा
इरमोजन	यर्सिनिया रूकेरी	बैक्टरीन	आक्वाहेल्थ	ट्राउट/सालमन	डुबाना (इमरसन), इनजेक्सन
विब्रोजन	विब्रियो एनग्यूलेरियम	बैक्टरीन	आक्वाहेल्थ	ट्राउट/सालमन सी बीम, सी बास	डुबाना (इमरसन), इनजेक्सन
एक्वावाक इ आर एम	यर्सिनिया रूकेरी	वैक्टरीन	ए.वी.एल.	ट्राउट/सालमन	डुबाना (इमरसन), मुख द्वारा
एक्वावाक विब्रियो	विब्रियो एनग्यूलेरियम	बैक्टरीन	ए.वी.एल.	ट्राउट/सालमन	डुबाना (इमरसन), इनजेक्सन
एक्वावाक फूरवाक 5	एरोमोनास सालमोनीसिडा	बैक्टरीन	ए.वी.एल.	ट्राउट/सालमन	डुबाना (इमरसन), इनजेक्सन, मुख द्वारा
एक्वावाक फूरवाक 5 विब्रियो	एरोमोनास सालमोनीसिडा विब्रियो एनग्यूलेरियम	बैक्टरीन	ए.वी.एल.	ट्राउट/सालमन	डुबाना (इमरसन)

व्यवसायिक नाम	एंटीजन	टीका के प्रकार	कम्पनी	मत्स्य जाति	अनुप्रयोग
एक्वावाक (एफ.एच.वी.)	एरोमोनास सालमोनीसिडा विब्रियो एनग्यूलेरियम विब्रियो सालमोनीसिडा	बैक्टरीन	ए.वी.एल.	ट्राउट／सालमन	इनजेक्सन
माइक्रोसाल	एरोमोनास सालमोनीसिडा	बैक्टरीन	माक्रोटेक	ट्राउट／सालमन	डुबाना (इमरसन) इनजेक्सलन
माइक्रोसाल	एरोमोनास सालमोनीसिडा	बैक्टरीन	माक्रोटेक	ट्राउट／सालमन	मुख द्वारा
माइक्रोभ	यर्सिनिया सालमोनीसिडा	बैक्टरीन	माक्रोटेक	ट्राउट／सालमन	मुख द्वारा
माइक्रोविब	विब्रियो एनग्यूलेरियम	बैक्टरीन	माक्रोटेक	ट्राउट／सालमन	मुख द्वारा
मल्टीवाक 3	विब्रियो एनग्यूलेरियम एरोमोनास सालमोनीसिडा	बैक्टरीन	माक्रोटेक	ट्राउट／सालमन	इनजेक्सन
मल्टीवाक 4	विब्रियो एनग्यूलेरियम विब्रियो सालमोनीसिडा	बैक्टरीन	माक्रोटेक	ट्राउट／सालमन	इनजेक्सन
माइक्रोपास	फाट. दमसेला	बैक्टरीन	माक्रोटेक	सी बीम／बास	डुबाना (इमरसन)
माइक्रोइरम	यर्सिनिया रूकेरी	बैक्टरीन	माक्रोटेक	ट्राउट／सालमन	डुबाना (इमरसन) मुख द्वारा
माइक्रो एसआरएस	पी. सालमोनिस	बैक्टरीन	माक्रोटेक	ट्राउट／सालमन	डुबाना (इमनसन)
माइक्रोसाल	एरोमोनास सालमोनीसिडा	एटैन्च्युएड	माक्रोटेक	ट्राउट／सालमन	ड़ुबाना (इमरसन)
माइक्रोवीर (आई.एच.एन.)	आई.एच.एन.वी.	एडज्युवेन्टेड	माक्रोटेक	ट्राउट／सालमन	इनजेक्सन
माइक्रोवी (आई.पी.एन.)	आई.पी.एन.वी.	एडज्युवेन्टेड	माक्रोटेक	सालमन	इनजेक्सन

टीकों के प्रकार

1. सम्पूर्ण जीव टीका

प्रायः टीके किसी रोग के जीवाणु कोशिकाओं या विषाणु कणों को मृत (निष्क्रिय) या जीवित परन्तु अत्यधिक क्षीण एट्टीन्यूटेड और रोग निष्क्रिय एवायरूलेन्ट अवस्था में संगठित करके बनाये जाते हैं।

आजकल उपलब्ध ज्यादातर मत्स्य टीके (मृत) जीवाणु और विषाणु की श्रेणी में आते हैं जिनमें रोगाणु को गर्मी या रासायनिक तरीकों द्वारा इतना निष्क्रिय बना दिया जाता है कि उनमें रोग फैलाने की क्षमता समाप्त हो जाये। ऐसे मृत टीको को निश्चित अवधि के बाद बार बार देना पड़ता है ताकि मछली की प्रतिरक्षण क्षमता बनी रहे क्योंकि ''मृत'' टीके मुख्यतः एंटीबाडी की सक्रियता को ही उत्तेजित करते हैं परन्तु कोशिका द्वारा प्रतिरक्षण की क्षमता बढ़ाने में अधिक प्रभावशाली नहीं है।

2. जीवन क्षीण या जीवाणु टीका

कभी कभी जीवाणुओं की क्षमता को इतना क्षीण बना दिया जाता है कि उनकी रोग पैदा करने की शक्ति समाप्त हो जाती है परन्तु किसी पोषक में विकसित होने की शक्ति बनी रहती है। रोगाणु को इस तरह निष्क्रिय बनाने के लिए उन्हें लम्बी अवधि तक असाधारण परिस्थितियों में विकसित किया जाता है जो रोगाणु असाधारण परिस्थितियों में अच्छा विकास करते है इनको परपोषी के टीकाकरण के लिए चुना जाता है ताकि वह परपोषी के प्राकृतिक परिवेश में ठीक से विकसित न हो पाये। इस प्रकार की टीके से यह लाभ है कि

यह बहुत लम्बे समय तक रोग से प्रतिरक्षण कर सकते है क्योंकि इनमें शरीर के अन्दर बढ़ने और विकसति होने की क्षमता होती है इसलिए इस प्रकार के टीके को बार बार लगाने की जरूरत नहीं होती। बहुत से जीवित और क्षीण टीके शरीर के कोशिका द्वारा प्रतिरक्षण को उत्तेजित करते हैं और इसीलिए विषाणु जनित रोगों के लिए पूर्ववत टीके से ज्यादा लाभकारी है परन्तु इसमें एक खतरा यह है कि ये निष्क्रिय क्षीण रोगाणु कभी सक्रिय रोगाणु भी बन सकते हैं।

3. शुद्ध मैक्रोअणु टीका

जीवित, मृत, क्षीण, और निष्क्रिय टीकों के दुष्प्रभावों से बचने के लिए मैक्रोअणु टीका प्रयोग किया जा सकता है जो रोगाणु से कुछ विशिष्ट मैक्रोअणुओं को अलग कर उनका शुद्धीकरण करके बनाया जाता हैं मुख्यतः तीन प्रकार के मैक्रोअणु टीका बनाने के काम आते है :

क. निष्क्रिय बाहरी विष

ख. कैपसुलर पॉलीसैकराइड्स एवं

ग. रीकॉम्बीनेंट एन्टीजन टीका

क. निष्क्रिय बाहरी विष

कुछ जीवाणु बाहरी विष बनाते हैं जो कि रोग जैसे ही लक्षण शरीर में पैदा करते हैं इस विष को शुद्ध करके और फॉरमल्डिहाइड द्वारा निष्क्रिय बना दिया जाता है। यह निष्क्रिय अणु, मैक्रोअणु टॉक्साइड कहलाता है।

ख. कैपसुलर पॉलीसैकराइड टीका

कुछ वैक्टीरिया की रोग जनक शक्ति उनके पालीसैक्राइड कोष पर निर्भर करती है जो फैगोसाइटोसिस या सफेद रक्त कोशिकाओं द्वारा रोगाणु के भक्षण का प्रतिरोध करती हैं यदि कैप्सूल पर एन्टीबाडीस की परत चढ़ा दी जाये तो मैक्रोफेजेज की रोगाणुओं को भक्षण करने की क्षमता काफी बढ़ जाती है इसीलिए शुद्ध कैपसुलर पॉलीसैक्राइड्स को टीके के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। परन्तु पॉलीसैक्राइड्स के शुद्धिकरण में खर्चा बहुत अधिक है और इसीलिए मछली के संदर्भ में उपयोगिता बहुत कम हो जाती है।

ग. रीकॉम्बीनेंट एन्टीजन टीका

रोगाणु के किसी भी प्रतिरक्षण क्षमता रखने वाले प्रोटीन को क्लोनिंग करके रीकॉम्बीनेंट डी.एन.ए. तकनीक द्वारा बैक्टीरिया, ईस्ट या मछली की कोशिका का 'जैनेटिक पदार्थ'' बनाया जा सकता है ये पदार्थ एन्टीजेन बनाने की फैक्ट्री के रूप में ढेर सारा वाइरल ओर बैक्टीरियल प्रतिरक्षक प्रोटीन बना लेते है जिनकों शुद्ध करके टीके के रूप में प्रयोग किया जाता है। मछलियों में इस तकनीक से इन्फेक्शियस पैन्क्रीयॅाटिक नैक्रोसिस (आइ.पी.एन.) के लिए टीके बनाये गये है।

4. रीकॉम्बीनेट वेक्टर टीका

इस तरह का टीका बनाने के लिए रोग जनक रोगाणुओं के खास एन्टीजेंस को लेकर जो जीन बनते

हैं उनको निष्क्रिय या क्षीण शक्ति वाले वाइरस या बैक्टीरिया में डाल देते हैं ये निष्क्रिय बैक्टीरिया उस रोगाणु के लिए वाहक का कार्य करते है। इन बैक्टीरिया को टीके के रूप में पोषक में पहुँचा देते है जहाँ बैक्टीरिया के प्रजनन के साथ साथ रोगाणु भी गुणात्मक रूप से बढ़ते जाते हैं यद्यपि ये टीका बनाने की एक अच्छी तकनीक है परनतु मत्स्य टीकाकरण के क्षेत्र में इस दिशा में अभी बहुत कम काम हुआ है।

5. डी.एन.ए. टीका

यह टीकाकरण की एक नयी तकनीक है जिसमें प्लाज्मिड डी.एन.ए. को जिसमें विदेशी एन्टीजिनिक प्रोटीन कोडेड होती है सीधे प्राप्त कर्ता की माँसपेशियों में इन्जेक्ट कर देते हैं। यह डी.एन.ए. माँसपेशियों की कोशिकाओं में चला जाता है और इनकोडेड प्रोटीन्स माँसपेशियों की कोशिकाओं द्वारा व्यक्त होते है। ये टीके विदेशी प्रोटीन के लिए ह्यूमोरल और सैल्यूलर दोनों प्रकार का प्रतिरक्षण करने में सक्षम हैं। डी.एन.ए. टीके के बहुत से लाभ हैं। इसमें इनकोडेड प्रोटीन प्राकृतिक रूप से बिना किसी रूपान्तर या डीनेचुरेशन के बढ़ता जाता है ओर इसीलिए इसमें प्रतिरक्षण क्षमता बाकी अन्य टीकों से बेहतर ओर अधिक समय तक बनी रहती है। इसके अलावा प्लाज्मिड डी.एन.ए. के टीके को सुरक्षित रखने के लिए रेफ्रीजरेशन की भी आवश्यकता नहीं है जिसमें ये सस्ता भी पड़ेगा। मछलियों में डी.एन.ए. टीके पर प्रयोग चल रहे हैं जिनके अच्छे परिणाम प्राप्त हुये है।

टीकाकरण की विधियाँ

टीकाकरण की सबसे प्रभावशाली विधि है, इन्जेक्शन परन्तु एक–एक मछली को पकड़कर इन्जेक्शन लगाना बहुत मुश्किल है इसीलिए अधिकांश मछलियों को टीका खाने के साथ मिलाकर या टीके का घोल बनाकर उसमें मछली को डुबोकर रख दिया जाता है या टीके के घोल को स्प्रे भी कर सकते हैं (सारणी 2 एवं सारणी 3)।

सारणी 2: मछलियों को टीका लगाने के तरीके

मार्ग	टीके का तनूकरण	आवश्यक समय
डुबाना	1:3 / 1:10 / 1:100	5–30 सेकेण्ड
नहलाना	1:500 / 1:5000	एक घंटा और अधिक
स्प्रे	1:3 / 1:10 / 1:100	2–5 सेकेण्ड
टीका	बिना तनूकरण किए 0.1 मि.ली.	सीधे इन्जेक्शन
मुखीय	भोजन में	एक सप्ताह और अधिक

भविष्य में टीकाकरण

हाल के वर्षों में प्रतिरक्षण विज्ञान एवं जैवतकनीक में काफी प्रगति हुई है। कई सूक्ष्मजीवियों के जीनोम का न्यूक्लियोटाइड अनुक्रम ज्ञान हो चुका है। इसी प्रकार कुछ मछलियों में 'जीनोम सीक्विंसिंग' का काम पूरा हो चुका है। जैवअभियंत्रिकी द्वारा 'डी.एन.ए.' स्थानांतरण करके अत्यंत प्रभावशाली 'एंटीजेन' बनाया जा सकता है। इसके लिए डी.एन.ए. का ऐसा टुकड़ा जो एंटीजेन का निर्माण करता है, किसी उपयुक्त सूक्ष्मजीवी में स्थानांतरित कर दिया जाता है जहां तेजी से एक प्रभावशाली एंटीजेन का निर्माण होने लगता है।

अनुवांशिक एट्टीन्यूऐशन तनूकरण

किसी कोशिका में डी.एन.ए. खण्ड निविष्ट करने के विपरीत उससे किसी डी.एन.ए. खण्ड को अलग भी किया जा सकता है। यदि किसी रोगजनक सूक्ष्मजीव के विशिष्ट जीन को जो बीमारी का कारण होते हैं उन्हें काटकर निकाल दिया जाए, परन्तु उसके लाभकारी जीन बचे रहें तो इस सूक्ष्मजीव का तनूकरण किया जा सकता है तथा यह तनूकृत सूक्ष्मजीव सजीव टीका का काम कर सकता है।

प्रोटीन अभियांत्रिकी

इसके द्वारा किसी एंटीजेन की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाया जा सकता है अथवा उसका अधिक मात्रा में सस्ता उत्पादन किया जा सकता है। रक्षात्मक एंटीजेन को एपीटोप्स के विदलन द्वारा जो टी–सप्रेसर कोशिकाओं को उत्तेजित करते हैं, अधिक इम्यूनोजेनिक बनाया जा सकता है। किसी एंटीजेन का रक्षात्मक एपीटोपस एमीनों अम्ल के एक छोटे अनुक्रम से बना होता है जिसे कृत्रिम रूप से सस्ती विधि द्वारा संश्लेषित कर एक उपयुक्त वाहक एंटीजेन में मिलकर टीके की तरह प्रयोग किया जा सकता है।

सारणी 3 : अन्तः क्षेपण (इंजेक्शन), डुबाना (इमरसन) तथा मुखीय टीकों के गुण एवं दोष

विधि	गुण	दोष
अन्तः क्षेपण	सबसे प्रभावशाली प्रतिरक्षण मार्ग, एडजूवैन्टस के उपयोग की सुविधाएं बड़ी मछलियों के लिए अत्यधिक सस्ती विधि	केवल सघन मत्स्य पालन के लिए उपयुक्त, मजदूरी अधिक, मछली में तनाव एवं अधिक थकावट (बेहोशी, मछली को हाथ से पकड़ने आदि के कारण), मछली का 15 ग्राम से अधिक भार का होना आवश्यक।
डुबाना	छोटी मछलियों (5 ग्राम से भी कम) का सामूहिक टीकाकरण, 10 ग्राम से बड़ी मछलियों के लिए अत्यधिक सस्ती विधि, कष्टरहित	केवल सघन मत्स्य पालन के लिए उपयुक्त, हाथ से पकड़ने के कारण मछलियों के लिए कष्टकारी, अन्तः क्षेपण विधि से कम
मुखीय टीका		कम प्रभावकारी, टीके की अधिक मात्रा में आवश्यकता, केवल कृत्रिम भोजन लेने वाली मछलियों के लिए उपयुक्त

इसी प्रकार की अन्य तकनीकों द्वारा भविष्य में टीकाकरण के क्षेत्र में बहुत तीव्र गति से प्रगति होने की संभावना है। वह दिन दूर नहीं जब मछलियों में टीकाकरण, उनको दवाइयां एवं एन्टीबायोटिक्स देने की अपेक्षा अधिक कारगर और सस्ता साबित होगा।

''मानव आहार में मछली का महत्व''

विश्वामित्र सिंह बैसवार, रविन्द्र कुमार, अखिलेश कुमार मिश्र, बासदेव कुशवाहा एवं एन.एन. नागपुरे

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है भोजन। अब बात आती है कि भोजन हमारा कैसा होना चाहिए जिससे शरीर स्वस्थ रहें। क्योंकि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है। इसलिए स्वस्थ रहने से हम अपने और देश के चहुमुखी विकास में योगदान दे सकेंगे। इसलिए हमें यह ध्यान देना चाहिए कि जो भोजन हम ग्रहण कर रहें हैं, वह हमारे लिए स्वास्थ्यवर्धक है कि नहीं। स्वास्थवर्धक आहार वह होता है जिसमें शरीर के लिए लगभग सभी आवश्यक तत्व उपस्थित हों।

शाकाहारी मुख्य रूप से पौधों से प्राप्त भोज्य पदार्थ पर निर्भर रहते हैं। प्रोटीन के लिए वे प्रायः मूँगफली, गेहूँ, मक्का, दाल, मूंग इत्यादि लेते हैं। इसी तरह मांसाहारी व्यक्ति भोज्य पदार्थ के लिए दूध, अण्डे, मछली, मांस इत्यादि पर निर्भर रहते है। जिसमें मछली हमारे लिए अपेक्षाकृत सस्ती प्रोटीन का अच्छा स्रोत है जिसका व्यय एक आम व्यक्ति भी कर सकता हैं। मछली विश्व में लगभग सभी जगह पायी जाती है तथा 240 ग्राम मछली आहार के रूप में लेने से हम अपने प्रत्येक दिन की शरीर की प्रोटीन आवश्यकता को पूरा कर सकते हैं। 100 ग्राम मछली आहार लेने से शरीर को 420 से 840 किलो कैलोरी ऊर्जा मिलती है। एवं मछलियों में प्रचुर मात्रा में विटामिन्स ए डी बी–6 तथा बी–12 पाया जाता है जो कि लाल रक्त कणिकाओं के उत्पादन तथा प्रतिरोधक कणिकाओं के उत्पादन एवं मूल तलिका तंत्र को स्वस्थ बनाये रखने के लिए आवश्यक है। ये तत्व क्लेम्स (clams), हेरिंगस (Herrings), क्रैब्स (crabs), मसेल्स (mussels), ओएस्टर (oyester) में भी पर्याप्त मात्रा में उपस्थित होते है।

मछली में पाये जाने वाले अवयव

विटामिन्स, प्रोटीन के अतिरिक्त मछलियों में सोडियम, पोटेशियम, कैलशियम, आयोडीन, सीलेनियम, जिंक, आयरन, मैगनिशयम एवं कापर तत्व भी प्रचुर मात्रा में उपस्थित होते है। इन तत्वों की शरीर में उपयुक्त मात्रा में उपस्थिति शरीर को सम्पूर्ण आरोग्य प्रदान करती है। सोडियम एवं पोटेशियम तत्वों की शरीर में अधिकता होने पर रक्त दाब सम्बन्धी विकार उत्पन्न हो जाता है जो प्राणघातक भी हो सकता है। इसलिए ऐसा आहार ग्रहण करना चाहिए जिसमें ये तत्व संतुलित मात्रा में उपस्थित हों, इस दृष्टि से भी मछली उपयुक्त आहार है। प्रायः 100 ग्राम मछली के मांस में 60 मिलीग्राम से 100 मिलीग्राम तक सोडियम उपस्थित होता हैं परन्तु 100 ग्राम सेलफिश में 200 से 400 मिलीग्राम पाया जाता है। इसी प्रकार 100 ग्राम मछली में 250 से 320 मिली ग्राम पोटेशियम की उपस्थिति दर्ज की गयी है। दैनिक आहार में 1.8 से 5 मिली ग्राम पोटेशियम ग्रहण करने से उच्च रक्तदाव से बचा जा सकता है। क्योंकि पोटेशियम शरीर में नमक और पानी के अनुपात को सामान्य बनाये रखता है। इसी प्रकार मछलियों में कैलशियम की उपस्थिति भी हमारे शरीर की हड्डियों एवं दातों को जीवन पर्यन्त शक्ति प्रदान करती है।

उच्च रक्त दाब का एक मुख्य कारण शरीर में मैंगनीशियम आयन की कमी भी है। सामान्य रक्त दाब बनाये रखने के लिए शरीर को प्रतिदिन 300 मिली ग्राम से 800 मिली ग्राम मैंगनीशियम आयन की आवश्यकता होती है एवं मछली आहार में कापर की उपस्थिति भी हमारे शरीर के लिए लाभदायक है क्योंकि यह लाल रक्त कणिकाओं के बनने और कोलेजन के बनने के लिए आवश्यक होता है। यह ओएस्टर में भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

मछलियों में प्रोटीन, लिपिड्स, खनिज तत्व तथा विटामिन्स प्रचुर मात्रा में एवं कार्बोहाइड्रेट्स कम मात्रा में पाया जाता है। प्रोटीन अमीनों अम्लों से मिलकर बनी होती है। अमीनों अम्ल दो प्रकार के होते है। आवश्यक तथा अनावश्यक अमीनों अम्ल। अनावश्यक अमीनों अम्लों का निर्माण शरीर स्वयं करता है परन्तु आवश्यक अमीनो अम्ल बाह्य भोज्य पदार्थ से ग्रहण करता है। आवश्यक अमीनों अम्ल भी मछलियों में पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है।

वसा का मुख्य अवयव है वसीय अम्ल एवं ग्लिसराल। वसीय अम्ल दो प्रकार के होते है। असंतृप्त तथा संतृप्त बसीय अम्ल। अन्य स्रोतों से प्राप्त असंतृप्त बसीय अम्लों की अपेक्षा मछलियों से प्राप्त असंतृप्त वसीय अम्ल शरीर के लिए नुकसान देय नहीं है क्योंकि उनकी रासायनिक संरचना विशिष्ट होती है।

हृदय घात से बचाव

ट्राइग्लिसाराइड्स एक ऐसी वसा है जिसकी अधिकता हृदय की कोरोनटी धमनी को मोटा कर हृदय घात का कारण बनता है। परन्तु ओमेगा–3 बसीय अम्ल शरीर के लिए बहुत ही लाभदायक है। यह प्रायः सभी मछलियों एवं प्रमुख रूप से हिलसा (Tennuoalora ilisha) नामक मछली में बहुतायत मात्रा में होता है। यह शरीर में रक्त के साथ जाकर शरीर में फाइब्रिनोजन के उत्पादन को रोककर कोरोनरी धमनी को मोटा होने से बचाता है तथा रक्त दाब को सामान्य बनाये रखता है। इसी प्रकार यह वसीय अम्ल अग्न्याशय की कोशिकाओं के नष्ट होने से उत्पन्न टाइप–2 प्रकार की डायबिट़ीज को भी नियन्त्रित करने में सहायता करता है। ओमेगा–3 वसीय अम्ल छोटे आकार की हिलसा मछली में अधिकतम में होता है किन्तु मझले एवं बड़े आकार की हिलसा मछली में ओमेगा–6 वसा अम्ल हिलसा मछलियों ओमेगा–3–वसा ज्यादा होता है। स्टीरिक अम्ल तथा ओलिक अम्ल भी पाया जाता है। ओलिक अम्ल की प्रचुर मात्रा कैंसर कारक में ओंन्को प्रोटीन (her-2/nev-coded) p185 Her-2/neu जीन के over expression को दबाता है। जिससे कैंसर होने की सम्भावना कम हो जाती है।

शोधों से पता चला है कि ओमेगा–6–वसीय अम्ल और ओमेगा–3–वसीय अम्ल का अनुपात मानव स्वास्थ्य पर भी प्रभाव डालता है। पश्चिमी भोजन में यह अनुपात प्रायः 15/1 से 16.7/1 होता है, अर्थात् ओमेगा–3–वसा अम्ल पश्चिमी भोजन में कम होता है। फलस्वरूप बहुत सी बीमारियों जैसे हृदय की बीमारी, कर्क रोग सूजन और जलन एवं स्वअसंक्रमक बीमारी को प्रेरित करता है। इस तरह ओमेगा–3–वसा अम्ल एवं ओमेगा–6–वसा अम्ल का अनुपात 4/1, 70% मृत्युदर को कम करता है। इसी प्रकार 2.5/1 का अनुपात कोलेटरल कर्क रोग को कम करता पाया गया है। इसका कम अनुपात स्त्रियों में स्तन कैंसर को कम करता है। 2–3/1 का अनुपात सूजन और जलन, संधिवात गठिया की बीमारी के होने के खतरे को कम करता है।

आरकेडोनिक अम्ल की उपस्थिति एवं उपयोगिता

मछिलयों में आरकेडोनिक अम्ल की उपस्थिति बहुत लाभदायक है। यह मूलतया चनेडी (channidae) परिवार के सदस्यों जैसे चन्ना स्ट्राइटा में बहुतायत में पाया जाता है जो कि घाव भरने के लिए आवश्यक अनेक वसा अम्ल एवं अमीनों अम्ल जो कि कोलेजन तन्तुओं के बनने में मदद करते है। चन्ना स्ट्राइटा में घाव भरने के लिए प्रचुर मात्रा में ग्लाइसीन एवं आरकेडोनिक अम्ल पाये जाते है। जो कि प्रोस्टा ग्लैनडिन प्रोटीन बनने के लिए आवश्यक होता है। यह घाव भरने में मदद करता है। अगर इसकी क्रीम बनायी जाये तो यह वैसा काम करती है जैसे कि सिटरीमाइड (Cetrimide), यह कोलैजन तन्तुओं को दोबारा ढालकर (remolding) करके मध्य एवं मध्यस्य प्रोटीन अणुओं के बीच गुणा बन्धन (cross-linking) करके उसकी तन्य क्षमता को बढ़ाकर घाव भरने में मदद करता है।

मछली की माँस पेशियों प्रमुख तत्वों का विवरण

तत्व	प्रतिशत
जल	70-80%
प्रोटीन	15-28%
बसा	10-20%
कार्बोहाइड्रेटस	1-5%
खनिज एवं विटामिन्स	1-2%

तत्व	औसत मान (मि.ग्रा. / 100 ग्राम)	परास (मि.ग्रा. / 100 ग्राम)
सोडियम	72	30-134
पोटेशियम	278	19-502
कैलशियम	792	19-881
मैगनिसियम	38	4-5-452
फास्फोरस	190	68-550
सल्फर	181	130-257
लौह तत्व	1-55	1.5-6
क्लोरीन	197	3-7.61
सिलिकान	4	-
मैगनीज	0.823	0.0003-25.2
जिंक	0.96	0.23-2.1
कापर	0.20	0.001-3.7
आरसेनिक	0.37	0.24-0.6
आयोडीन	0.15	0.001-2.73

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मछली मानव आहार में बहुत से लाभदायक अवयवों का सस्ता स्रोत है अतएव अधिकांश व्यक्तियों को मत्स्य एवं मत्स्य उत्पादों का आवश्यक मात्रा में नियमित उपभोग करना चाहिए।

विश्व की रोचक मछलियाँ–1

परशुराम शुक्ल

आइवरी, फ्लैट नं. 20, प्लेटिनम पार्क टी.टी. नगर, भोपाल (म.प्र.) – 462 003

मछलियों के अन्तर्गत ऐसे रीढ़धारी और ठण्डे खून वाले जलचरों को सम्मिलित किया जा सकता है, जो गलफड़ों से साँस लेते हैं। कुछ मछलियों के फेफड़े अथवा फेफड़ों के समान संरचना वाले अंग होते हैं, जिसकी सहायता से ये साँस लेती हैं और पानी के बाहर लम्बे समय तक जीवित रहती हैं। जैसा कि अभी–अभी बताया गया है कि मछलियाँ ठण्डे खून वाली होती हैं। किन्तु कुछ मछलियाँ ऐसी होती हैं, जिनके शरीर का तापक्रम आसपास के पानी के तापक्रम से कुछ अधिक होता है। टूना मछली इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। विश्व में समुद्री सूर्य मछली के समान कुछ ऐसी मछलियाँ भी पायी जाती हैं, जिनके पूँछ नहीं होती। कुछ मछलियों के तन्तुओं (फिलामेन्ट्स) के समान पूँछ होती है। ग्रनेडियर मछलियाँ इसी प्रकार की होती हैं। कुछ लोग ह्वेल, सील, डॉलफिन, पोपस आदि जलचरों को मछली समझते हैं। ये मछली नहीं हैं, बल्कि मानव के समान गर्म खून वाले स्तनधारी जीव हैं।

मछलियों का वर्गीकरण एक जटिल कार्य है। अधिकांश जीव वैज्ञानिक मछलियों को पिसीज वर्ग का जीव मानते हैं। किन्तु कुछ वैज्ञानिकों ने मछलियों के चार वर्ग बताये हैं – अगनाथा अर्थात् जबड़ा विहीन मछलियाँ, प्लेसोडर्म (प्लेसोडर्मी), कार्टीलेजियस अर्थात उपास्थिधारी मछलियाँ और ऑस्टेकथाइस (बोनीफिशेस) अर्थात् अस्थिधारी मछलियाँ। अस्थिधारी मछलियों को पुनः तीन उप वर्गों में बाँटा गया है– एकेन्थोगाइ, सेरकारटेरीगाइ और एक्टिनोरटीगाई। इनमें पहले उपवर्ग की अस्थिधारी मछलियाँ को तीन समूहों में रखा गया है– 1. कान्ड्रास्टीन्स, 2. हालोस्टीन्स और 3. टेलियोस्टीन्स। पहले समूह में स्टरजन जैसी मछलियाँ तथा दूसरे समूह में बोफिन आदि आती हैं। टेलियोस्टीन्स सबसे बड़ा समूह है। इसमें लगभग 20 हजार से अधिक जातियों की मछलियाँ आती हैं। वर्तमान समय की अधिकांश मछलियाँ इसी समूह की हैं। इस समूह की मछलियाँ बड़ी रोचक और विविधतापूर्ण हैं। समुद्री घोड़ा, पर्च, फ्लाउन्डर, ईल आदि मछलियाँ इसका उदाहरण हैं।

मछलियों के आकार और उनके समूह में काफी विविधता होती है। इनके शरीर की लम्बाई एक सेन्टीमीटर से लेकर 6 मीटर अथवा इससे भी अधिक हो सकती है। स्टरजन और पतवार मछली (ओर फिश) की लम्बाई 6 मीटर से अधिक होती है। वजन में समुद्री सूर्य मछली सबसे भारी होती है। इसका वजन 2 टन तक हो सकता है। विश्व की सबसे छोटी मछली फिलीपीन्स की गोबी मछली थी। इसके शरीर की लम्बाई 1.2 सेन्टीमीटर अथवा इससे भी कम हो सकती है। इसे विश्व का सबसे छोटा रीढ़धारी जीव माना जाता है।

मछलियों की शारीरिक संरचना एक निश्चित प्रकार की होती है। अधिकांश मछलियों का शरीर सर के पास पतला और नुकीला अथवा गोलाई लिये हुए होता है और बीच में सर्वाधिक मोटा हो जाता है तथा पुनः टेपर होना आरम्भ हो जाता है और पूँछ तक जाते–जाते पतला हो जाता है। टूना मछली का शरीर तारपीडो के समान होता है। इससे यह तेज गति से और लम्बी दूरी तक तैर सकती है। फरिश्ता मछली तथा इसी प्रकार की कुछ अन्य मछलियों का शरीर चपटा होता है। इससे इन्हें पानी के पौधों के मध्य कॉमाफ्लास मिलता

है, अतः शिकार इन्हें देख नहीं पाता और इनका भोजन बन जाता है। पफर मछली का शरीर गोल होता है एवं बॉक्स मछली का शरीर बक्से की तरह होता है। पाइक मछली का शीर पाइप के समान गोल और लम्बा होता है। कुछ मछलियाँ दूर से देखने पर साँप जैसी लगती हैं। ईल ऐसी ही मछली है।

विश्व की अधिकांश मछलियाँ अपना शरीर लहराकर तैरती है। तैरते समय इनकी पूँछ शरीरिक सन्तुलन बनाये रखने का काम करती है। इसके साथ ही यह शरीर को आगे बढ़ाने के लिए जोर लगाने का कार्य भी करती है। जिस मछली की पूँछ जितनी बड़ी होती है, वह उतनी ही शक्ति से तैर सकती है, किन्तु जितनी बड़ी पूँछ होती है, पानी में तैरते समय उतनी ही अधिक हलचल होती है। कुछ मछलियाँ अपनी पूँछ का उपयोग शिकार के लिए करती हैं। पाइक मछली की पूँछ लम्बी और भोथरी होती है। यह इससे अपने शिकार पर आक्रमण करती है। इसकी पूँछ की मार इतनी घातक होती है कि शिकार भाग नहीं पाता और इसका आहार बन जाता है।

मछलियों की पहचान इनके मीनपंखों से की जाती है। ये अपने मीनपंखों का उपयोग अनेक प्रकार से करती हैं। सामान्यतया मीनपंखों का उपयोग तैरने और शारीरिक सन्तुलन के लिए किया जाता है। इसके साथ ही अचानक रूकने और दाहिने–बायें अथवा पीछे मुड़ने का कार्य भी मीनपंखों की सहायता से किया जाता है। गरनार्ड मछली के मीनपंख विशिष्ट प्रकार के संवेदनशील अंग का भी कार्य करते हैं। पफर जैसी कुछ मछलियों के मीनपंखों में विषैले काँटे होते हैं। इनका उपयोग आत्मरक्षा के लिए अर्थात् शत्रुओं से बचने के लिए किया जाता है। कुछ मछलियाँ अपने मीनपंखों की सहायता से उड़ान (ग्लाइडिंग) भरती हैं। तितली मछली और उड़न मछली इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। पाल मछली (सेलफिश) के मीनपंखों की संरचना इस प्रकार की होती है कि यह इनका उपयोग तैरने के लिए पाल की तरह कर लेती है। मछलियों के मीनपंखों का एक महत्वपूर्ण उपयोग यह है कि इनसे इनका शरीर अधिक चपटा हो जाता है। अतः ये लुढ़कने से बच जाती हैं।

मछलियों के मीनपंखों के कुछ रोचक और विलक्षण उपयोग भी है। कुछ मछलियाँ अपने मीनपंखों का उपयोग समागम के समय करती हैं। इस समय इनके मीनपंख प्रजनन अंगों का कार्य करते हैं। कुछ मछलियों को अपने मीनपंखों की सहायता से जमीन पर चलते हुए भी देखा गया है। अधिकांश मछलियाँ पानी के भीतर बड़ी तेजी से मुड़ने के लिए अथवा अचानक रूकने के लिए सभी मीनपंखों का एक साथ उपयोग करती है। सभी मछलियों के मीनपंख एक जैसे नहीं होते। एक ही मछली के भी सभी मीनपंख समान नहीं होते। कुछ मीनपंख छोटे होते हैं और कुछ लम्बे होते हैं। प्रायः मीनपंखों में कठोर धागे से होते हैं। कुछ मछलियों के मीन पंखों में ये धागे काँटों के समान कठोर और नुकीले होते हैं। मछलियों का अपने मीनपंखों के काँटेदार भाग पर पूरा नियंत्रण होता है। इसे ये अपनी इच्छा से उठा सकती है और गिरा सकती हैं। ये प्रायः अचानक मुड़ते समय शारीरिक सन्तुलन बनाये रखने हेतु इस मीनपंख को खड़ा कर लेती हैं।

सामान्यतया मछलियों के शरीर पर शल्क होते हैं। ये इनके सुरक्षा कवच का कार्य करते हैं। जीवाश्मों के अध्ययन से यह पाया गया है कि मछलियों के पूर्वजों के शरीर पर बहुत मोटे और भारी शल्क होते थे। वर्तमान मछलियों के शरीर पर इस प्रकार के शल्क नहीं पाये जाते। अब इनके शल्क पतले और हल्के हो गये हैं।

कुछ मछलियाँ तो ऐसी हैं, जिनके शरीर पर शल्क होते ही नहीं अथवा बहुत कम होते हैं। एंगलर और बिल्ली मछली इसका सर्वोत्तम उदाहरण हैं। इन मछलियों की त्वचा चमड़े के समान होती है। बाक्स मछली

का शरीर कठोर और भारी हड्डियों की प्लेटों का बना होता है एवं इसे कछुए के कवच के समान सुरक्षा प्रदान करता है। समुद्री घोड़े और पाइक मछली की शारीरिक संरचना सर्वाधिक विलक्षण होती है। इनका शरीर हड्डियों के छल्लों से ढँका रहता है।

मछलियों के दाँतों की संरचना भी बड़ी रोचक और विविधतापूर्ण होती है। कुछ मछलियों के मानव के समान जबड़ों में दाँत होते हैं, किन्तु कुछ मछलियों की जीभ पर दाँत होते हैं तथा कुछ मछलियों के गलफड़ों में दाँत होते हैं। कुछ मछलियाँ ऐसी भी पायी जाती है, जिनके दाँत भोजन नली में होते हैं तथा कुछ मछलियाँ के तो दाँत होते ही नहीं है। सामान्यतया एक मछली के सभी दाँत समान होते हैं अर्थात एक ही स्वरूप और एक ही आकार के होते हैं। किन्तु ब्रीम और भेड़िया मछली के दाँत की तरह होते है तथा पीछे के दाँत चबाने वाली ढाढ़ों के समान होते है। अधिकांश मछलियाँ अपने दाँतों का उपयोग शिकार को निगलने के पहले उसे पकड़ने के लिए करती हैं। किन्तु पिरान्हा और नीली मछली अपने दाँतों से शिकार के छोटे–छोटे टुकड़े कर डालती है। मछलियों के दाँतों का स्वरूप भी विविधतापूर्ण होता है। बिल्ली मछली इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। काई खाने वाली मछलियों के दाँत सबसे अलग होते हैं। इनके दाँत कंघे की काँपों के समान होते हैं। इनसे इन्हें चट्टानों पर जमी काई खुरचने में सुविधा रहती है।

मछलियों के जबड़े और थूथुन भी बड़े विविधतापूर्ण होते हैं। वास्तव में इनके दाँतों, जबड़ों और थूथुन की संरचना का सीधा सम्बन्ध इनके भोजन से होता है। जैसा भोजन होता है, वैसी ही इनकी संरचना होती है। एक लम्बी कालावधि में इनके भोजन करने से सम्बन्धित अंग भोजन के अनुरूप हो गये हैं। उदाहरण के लिए जॉनडोरी और हाथी मछली का थूथुन इस प्रकार का होता है कि ये अपना मुँह कुछ दूरी तक आगे बढ़ा सकती है। समुद्री घोड़े और पाइप मछली का थूथुन पतला और ट्यूब जैसा होता है। इससे इन्हें छोटे–छोटे जीवों को चूसने में सुविधा रहती है। कुछ जाति की बिल्ली मछलियों के ओंठ काफी बड़े होते हैं। इससे ये बिना परेशानी के कम समय में अधिक काई खा सकती है। गहरे पानी में रहने वाली कुछ मछलियों के जबड़ों की संरचना इस प्रकार की होती है कि ये भोजन करते समय फैल जाते हैं। इससे इन्हें बड़े जीवों को निगलने में सुविधा रहती है।

मछलियों का भोजन बड़ा विविधतापूर्ण होता है। वास्तव में ऐसा कोई कार्बनिक पदार्थ नहीं है जो मछलियाँ न खाती हों। मछलियों के विषय में यह कहा जाता है कि बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। ऐसा होता भी है। किन्तु यह बात सभी मछलियों पर लागू नहीं होती। बहुत सी छोटी शिकारी मछलियाँ अपने से बड़ी मछलियों पर आक्रमण करती हैं और उन्हें अपना आहार बना लेती हैं। मछलियाँ मछलियों के साथ ही पानी के अन्य जीव भी खाती हैं। तोता मछली मूँगा खाती है। टेन्च और इन्द्रधनुषी रैस जैसी मछलियाँ बड़ी मछलियों के शरीर पर रहने वाले परजीवी खाती हैं। इस विशिष्ट गुण के कारण ये डॉक्टर मछली के नाम से विख्यात हो गयी हैं। कुछ मछलियाँ अपने शिकार को पूरा–पूरा न खाकर उसके शरीर के कुछ विशिष्ट अंग ही खाती हैं। अफ्रीका की सिकलिड मछलियाँ इसी प्रकार की मछलियाँ हैं। ये अन्य मछलियों के केवल मीनपंख और शल्क खाती हैं।

मछलियों के शिकार के साथ ही इनके शिकार करने का ढंग भी अलग–अलग होता है। अधिकांश मछलियाँ अपने शिकार को देखते ही उस परझपटती हैं और फिर उसे पकड़कर निगल जाती है। ऐसी मछलियों की संख्या भी बहुत अधिक है, जो अपने शिकार को पकड़कर चूसती हैं अथवा कुतरती हैं। कुछ मछलियाँ बड़े ही नियोजित ढंग से शिकार करती हैं। ये पहले शिकार की तलाश करती हैं और शिकार के

मिल जाने पर उसका पीछा करती हैं। इनका शिकार जब थक जाता है, अथवा ये शिकार के बहुत निकट पहुँच जाती हैं तो उस पर झपट कर आक्रमण करती हैं और उसे अपने मुँह में दबोच लेती हैं। गहरे पानी में पायी जाने वाली एंगलर मछली का शिकार करने का ढंग सर्वाधिक रोचक होता है। यह अपने शिकार को धोखा देकर भागती है। एंगलर मछली के एक विशेष प्रकार का अंग होता है, जिसे ल्यूर कहते हैं। यह अंग इसके शरीर से अलग होता है और एक छड़ जैसे अंग की सहायता से इसके शरीर से जुड़ा रहता है। एंगलर मछली शिकार के समय अपने शरीर से प्रकाश निकालती है। इसके शरीर के प्रकाश से इसका ल्यूर चमकता है, जिसे छोटी मछलियाँ जीव समझ कर खाने के लिए इसके पास आ जाती हैं। एंगलर मछली इसी अवसर की प्रतीक्षा में रहती है। जैसे ही कोई मछली इसके ल्यूर के निकट आती है, यह उसे दबोच लेती है और चट कर जाती है। नर एंगलर मछली के ल्यूर नहीं होता अतः इसे भोजन के लिए जीवन भर एक परजीवी की तरह मादा एंगलर मछली के साथ रहना पड़ता है।

अधिकांश मछलियाँ पानी के भीतर ही रहती है और पानी में रहने वाले जीवों का शिकार करती हैं। किन्तु कुछ मछलियाँ ऐसी भी हैं, जो पानी की सतह पर रहने वाले अथवा वृक्षों पर रहने वाले जीवों का शिकार करती हैं। धनुर्धारी मछली इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। धनुर्धारी मछली प्रायः पानी की सतह पर रहती है। यह शिकार करने के लिए पानी के बाहर अपना सर निकालती है और पानी के ऊपर लटकी हुई वृक्ष की शाखाओं ओर पत्तियों आदि पर बैठने वाले कीड़े–मकोड़ों की तलाश करती है। इसे जैसे ही किसी डाली अथवा पत्ती पर कोई जीव दिखाई देता है, यह उस पर पानी की एक तेज धार छोड़ती है। अचानक पानी की तेज धार पड़ने से जीव का सन्तुलन बिगड़ जाता है और वह पानी की सतह पर आ गिरता है। धनुर्धारी मछली इसी अवसर की तलाश में रहती है। वह जीव के गिरते ही उसके निकट पहुँचती है और उसे चट कर जाती है। मछलियों के शिकार और शिकार करने के इसी प्रकार के बहुत से विविधता पूर्ण तरीके होते हैं, जिनके विषय में आगे विस्तार से बताया गया है।

विश्व के अधिकांश जीवों के समान मछलियों के भी संवेदनशील अंग होते हैं। अर्थात् मछलियों में भी देखने, सुनने, सूँघने और स्पर्श के द्वारा आसपास की स्थितियों की जानकारी प्राप्त करने की क्षमता होती है। किन्तु सभी मछलियों में ये क्षमताएँ समान नहीं होतीं। अधिकांश मछलियों की आँखें पूर्ण विकसित होती हैं और इनकी दृष्टि अच्छी होती है। ये अपने शत्रु से बचने के लिए और शिकार करने के लिए अपनी आँखों का अधिक उपयोग करती हैं। किन्तु कुँओं, जलगुफाओं और गहरे पानी में रहने वाली मछलियाँ प्रायः अन्धी होती हैं। इनके शरीर पर आँखों के निशान तो होते हैं, किन्तु ये इनसे देख नहीं सकतीं। कुछ मछलियों की आँखें बहुत कमजोर होती हैं। ये अपनी आँखों से देख तो नहीं सकतीं किन्तु प्रकाश का आभाष प्राप्त कर सकती हैं। इस प्रकार की मछलियों की पीठ पर एक पार्श्वरेखा होती है। यही इनके सर्वाधिक सशक्त संवेदनशील अंग का कार्य करती है। कुछ मछलियों में देखने के साथ ही सूँघने की भी अद्भुत क्षमता होती है। स्टिकल बैक इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। सामान्यतया सूँघने की क्षमता उन मछलियों में अधिक होती है, जो सड़ा–गला मांस खाती हैं।

मछलियों की दृष्टि और घ्राण शक्ति के साथ ही सामान्यतया इनकी श्रवण शक्ति भी अच्छी होती है। उन मछलियों की श्रवण शक्ति अधिक अच्छी होती है, जो विभिन्न प्रकार की आवाजें उत्पन्न करती हैं। सागरों और महासागरों में विद्युत ईल, विद्युत बिल्ली मछली, विद्युत रे जैसी बहुत सी मछलियाँ पायी जाती हैं, जिनके शरीर में विद्युत उत्पादक अंग होते हैं। ये इनसे अपनी इच्छानुसार विद्युत उत्पन्न करती हैं। विद्युत मछलियों में विद्युत तरंगों को ग्रहण करने की विलक्षण क्षमता होती है। जिस प्राकर चमगादड़ पराध्वनिक तरंगें ग्रहण करती हैं।

गहरे पानी में रहने वाली एंगलर जैसी प्रकाश उत्पन्न करने वाली मछलियाँ शिकार पकड़ने के साथ ही अपनी जाति की अन्य मछलियों को पहचानने के लिए भी प्रकाश उत्पन्न करती हैं। इनमें समागम काल में नर मादा एक दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए भी प्रकाश उत्पन्न करते हैं तथा एक दूसरे को एक दूसरे के प्रकाश से पहचान लेते हैं।

मछलियों का समागम और प्रजनन बड़ा रोचक, रोमांचक और विविधतापूर्ण होता है। अधिकांश मादाएँ स्वतंत्र रूप से पानी में अण्डे देती हैं और नर शुक्राणु छोड़ते हैं। पानी में स्वतः अण्डों का शुक्राणुओं से मिलन होता है, जिससे अण्डे निषेचित हो जाते हैं। जो अण्डे निषेचित नहीं होते वे नष्ट हो जाते है अथवा अण्डे खाने वाले जीवों का भोजन बन जाते हैं। सामान्यतया ये अण्डे पानी में उतराते रहते हैं अथवा किसी जलीय पौधे या चट्टान से चिपक जाते हैं। इस प्रकार की मछलियों में नर–मादा अण्डे सेते नहीं हैं और न ही इनकी सुरक्षा करते हैं। इनमें मादाएँ लाखों–करोड़ों की संख्या में अण्डे देती हैं किन्तु प्रायः दो अथवा तीन सुरक्षित रहते हैं और वयस्क बन पाते हैं। कॉड और दीर्घ मछली इसी प्रकार की मछलियाँ हैं। जिन मछलियों में नर अथवा मादा या नर–मादा दोनों ही अण्डों की सुरक्षा करते हैं, उनमें अण्डों की संख्या कम होती है। इनके बहुत कम अण्डे नष्ट होते हैं। कुछ मछलियाँ पानी में घोसला तैयार करती हैं और अपनी अण्डे सेती है। सालमन एक ऐसी ही मछली है। किन्तु इसका घोसला बहुत साधारण होता है। कंटकपृष्ठ मछली (स्टिल बैक) भी पानी के भीतर घोसला बनाकर अण्डे देती है और अण्डों तथा बच्चों की सुरक्षा करती है। इसका घोसला बड़ा मजबूत और सुन्दर होता है। सिकली डाइ परिवार की कुछ मछलियाँ भी घोसला बनाती हैं और इसी घासले में अण्डे देती हैं तथा इनकी सुरक्षा करती हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये अपने नवजात बच्चों की सुरक्षा के लिए इन्हें अपने मुँह में भर लेती हैं। ये मछलियाँ बच्चों के बड़े हो जातने पर भी खतरा निकट होने पर इन्हें अपने मुँह में भर लेती है तथा खतरा दूर हो जाने पर उन्हें मुँह के बाहर निकाल देती हैं। इनके बच्चे अपने जन्मदाता से अधिक दूर नहीं जाते तथा लम्बे समय तक उनके साथ रहते हैं। समुद्री घोड़े का प्रजनन सभी मछलियों से अलग होता है। इसमें नर के भ्रूणदानी होती है। इसी में अण्डे रहते हैं। समय पूरा होने पर नर को प्रसवपीड़ा होती है तथा वह जीवित बच्चों को जन्म देता है।

मछलियों के प्रजनन के सम्बन्ध में कुछ ऐसे विलक्षण तथ्य भी हैं, जिन पर सरलता से विश्वास नहीं होता। मछलियाँ जलचर हैं। इनका सम्पूर्ण जीवन पानी के भीतर ही व्यतीत होता है। ये अपने अण्डे और बच्चे भी पानी के भीतर देती है। किन्तु कुछ मछलियाँ अण्डे देने के लिए पानी के बाहर आ जाती हैं और जमीन पर अण्डे देती हैं। कैरेसिन मछलियाँ इसी प्रकार की होती है। ये पानी के निकट जमीन पर अण्डे देती है और अण्डों को नम बनाये रखने के लिए बार–बार अपना शरीर गीला कर के इनके ऊपर आती है और इन पर पानी छिड़कती हैं। टेट्रा इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। एनुअल मछलियाँ और इनके अण्डे इससे भी अधिक विलक्षण होते हैं। इनके अण्डे सूख जाने पर भी खराब नहीं होते और अगली वर्षा तक अर्थात् एक वर्ष तक सुरक्षित रहते हैं। कुछ मछलियों के अण्डे इनके शरीर के भीतर अंडाशय में ही रहते हैं। ये जीवित बच्चों को जन्म देती हैं।

मछलियों के निवास स्थल बड़े विविधतापूर्ण होते हैं। ये सागरों और महासागरों के उथले पानी और गहरे पानी में, नदियों, झीलों, नहरों, जलगुफाओं, कुओं, तालाबों, कीचड़ और दलदल वाले स्थानों में देखने को मिल जाती है। कुछ छोटी मछलियाँ तो ऐसी होती हैं, जो जीवनभर किसी बड़ी मछली के शरीर पर अथवा गलफड़ों के भीतर परजीवी के समान रहती हैं। ये बर्फ जैसी ठण्डक वाले पानी साधारण पानी और गर्म जलधाराओं

के मध्य भी पायी जाती हैं। उष्ण कटिबन्धीय झीलों में भोजन अधिक रहता है। यहाँ एक एकड़ में 135 किलोग्राम से लेकर 225 किलोग्राम तक भोजन उपलब्ध हो जाता है। अतः मछलियाँ अधिक संख्या में मिल जाती हैं। इसके विपरीत सागरों और महासागरों में गहराई पर भोजन की भारी कमी होती है। यहाँ भोजन की इतनी कमी होती है कि एक घन मील में केवल एक मछली ही रह सकती है। मछलियों की संख्या में भी पर्याप्त विविधता देखने को मिलती है। विश्व में ऐसी बहुत सी मछलियाँ है जिनकी संख्या करोड़ों में है, जबकि बहुत सी मछलियाँ ऐसी भी हैं, जिनकी संख्या कुछ सौ ही शेष बची है। देखने पर ऐसा लगता है कि पर्यावरण सम्बन्धी विविधता केवल जमीन पर ही होती है एवं सभी स्थलों पर पानी समान होता है। वास्तव में पानी में भी जमीन के समान विविधताएँ होती हैं। इन विविधताओं को देखने से ऐसा लगता है कि मछलियों में अपने परिवेश से अनुकूलन करने की बहुत अधिक क्षमता होती है।

विश्व की रोचक मछलियाँ – 2
''अलास्का की काली मछली''

परशुराम शुक्ल

आइवरी, फ्लैट नं. 20, प्लेटिनम पार्क टी.टी. नगर, भोपाल (म.प्र.) – 462 003

अलास्का की काली मछली ताजे पानी के तालाबों, छोटी–छोटी नदियों और दलदली भागों में पायी जाने वाली सामान्य मछलियों जैसी एक मछली है। यह उत्तर–पश्चिमी अलास्का के एक बहुत बड़े क्षेत्र में और बहुत अधिक संख्या में पायी जाती है। इसका रंग काला होता है अतः इसे काली मछली भी कहते हैं। अलास्का की काली मछली अलास्का के साथ ही उत्तरी कनाडा के बेटिंग स्टेट के कुछ द्वीपों और साइबेरिया में भी देखने को मिलती है। यह जिन स्थानों पर भी मिलती है, बहुत बड़ी संख्या में मिलती है। कभी–कभी तो छोटी–छोटी नदियों में इसकी संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि नदी की धारा इनके द्वारा रूकती सी जान पड़ती है। काली मछली सदैव सागर तटों के निकटवर्ती भागों में पायी जाती है। यह सागर तटों से दूर भीतरी भागों में बहुत कम ही मिलती है।

अलास्का की काली मछली पाइक मछली के समान होती है। कुछ जीव वैज्ञानिक तो इसे पाइक मछली की निकट सम्बन्धी मानते हैं। काली मछली का स्वरूप सामान्य मछलियों के समान होता है। इसका शरीर भारी होता है तथा लम्बाई 10 सेन्टीमीटर से 20 सेन्टीमीटर तक होती है। इसके शरीर का रंग हल्का धूसर होता है और इसपर काले रंग की पट्टियाँ होती हैं। काली मछली की पीठ और पूँछ के पास के मीनपंख (फिन्स) पाइक मछली की तरह काफी पीछे होते हैं। इनकी सहायता से यह बहुत तेज गति से तैर सकती है।

काली मछली सर्दियों में 6–7 मीटर तक गहरे पानी में रहती है तथा वसन्त ऋतु आते ही पुनः पानी की ऊपरी सतह पर आ जाती है और एक–दो मीटर की गहराई में बनी रहती है। गर्मियों के मौसम में यह सघन पानी के पौधों के मध्य रहती है और खुले पानी में दिखायी नहीं देती। अलास्का की काली मछली बड़ी सहनशील होती है। यह थोड़े से स्थान में भी सरलता से रह सकती है। यही कारण है कि एक छोटी सी जगह में इसकी बहुत बड़ी संख्या देखने को मिल जाती है। इतना ही नहीं, यह दूसरी जाति की मछलियों के मध्य भी सरलता से रह लेती है और उपलब्ध भोजन को मिल बाँट कर खाती है। यह एक आलसी मछली है, किन्तु शिकार एवं खतरे के समय इसमें बिजली की सी तेजी देखी जा सकती है।

काली मछली में विषम परिस्थियों में भी अपना अस्तित्व बनाये रखने की अद्भुत क्षमता होती है। यह सर्दियों में बर्फ के नीचे शून्य डिग्री सेल्सियस तक के तापमान में और गर्मियों में 20 डिग्री सेल्सियस तक के तापमान में जीवित रहती है। काली मछली उस पानी में भी सरलता से साँस ले सकती है, जिसमें आक्सीजन की मात्रा बहुत कम होती है। इन्हीं गुणों के कारण काली मछली के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गयी हैं तथा यह आज भी जीव वैज्ञानिकों के लिए शोध एवं चर्चा का विषय बनी हुई है। कुछ जीव वैज्ञानिकों का मत है कि काली मछली के गलफड़े बड़े होते हैं तथा एक विशिष्ट आवरण से ढँके होते हैं। इसीलिए इसमें विषम परिस्थितियों में रहने की क्षमता उत्पन्न हो गयी है।

काली मछली सामान्यता पानी के पौधे और पानी में पाये जाने वाले छोटे–छोटे कृमि खाती है, किन्तु इसके अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि यह इन दोनों के साथ ही जलीय पिस्सुओं को भी अपना आहार बनाती है। इसका प्रमुख भोजन विभिन्न जलीय जीवों के लारवे है, किन्तु मच्छर के लारवे यह विशेष रूचि से खाती है।

पानी में पाये जाने वाले जीवों में काली मछली का कोई विशेष शत्रु नहीं होता, किन्तु एस्किमों और उनके पालतू कुत्ते इसका बहुत अधिक शिकार करते हैं। पूरे वर्ष भर सरलता से उपलब्ध होने के कारण यह एस्किमो और उनके कुत्तों का प्रमुख भोजन बन गयी है।

काली मछली के प्रजनन काल के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। इनमें नर या मादा अण्डों की देखभाल नहीं करते, बल्कि इनका विकास स्वतः होता है। काली मछली के अण्डों से लारवे बहुत ही शीघ्र निकल आते हैं तथा नन्हीं मछलियों के रूप में विकसित होते हैं। नवजात मछलियों के शरीर का रंग हल्का कत्थई होता है तथा इनकी दोनों बगलों पर गहरे कत्थई रंग के पट्टे होते हैं।

काली मछली के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि यह पानी के बर्फ बन जाने पर जम जाती है और बर्फ पिघलने पर पुनः जीवित निकल आती है। सर्वप्रथम सर जॉन फ्रैंकलिन द्वारा सन् 1824 में लिखी गयी पुस्तक फर्स्ट ओवर जर्नी टु पोलरसी में इस प्रकार की अनेक घटनाओं एवं किंवदन्तियों का विवरण लिखा है। इसके लगभग 58 वर्ष बाद सन् 1882 में नारडैस्क जोल्ड ने उत्तरी कनाडा के कुछ दुर्गम स्थानों की यात्रा की और अपनी पुस्तक 'वोरोज आफ दि बेगा' में इस तथ्य की पुष्टि की कि एक विशेष प्रकार की काले रंग की मछली जमे हुए तालाबों में जीवित रह सकती है। अलास्का की खोज करने वाले विख्यात अन्वेषक एल. एम. टर्नर ने काली मछली के सम्बन्ध में बहुत ही महत्वपूर्ण जानकारियाँ दी हैं। टर्नर ने एक स्थान पर लिखा है कि एक मछली को लाये हफ्तों हो गये थे और वह भयानक ठण्डक के कारण घास की टोकरी में जमी पड़ी थी, किन्तु अचानक एक दिन मौसम में कुछ गर्मी होने के कारण बर्फ के साथ–साथ वह मछली भी पिघल गयी और आश्चर्य की बात यह थी कि वह सामान्य मछलियों की तरह जीवित थी। एक दूसरे स्थान पर टर्नर ने लिखा है कि एक बार एक एस्किमो के पालतू कुत्ते ने बर्फ की तरह जमी हुई मछली को मृत समझ कर निगल लिया। कुछ देर बाद कुत्ते के पेट की गर्मी से मछली पिघली तथा कुत्ते को कुछ अजीब सा लगा, जिससे उसने उल्टी कर दी। इस उल्टी के साथ मछली भी बाहर आ गयी। यह मछली अभी जीवित थी।

आरम्भ में जीव वैज्ञानिक काली मछली से सम्बन्धित इन घटनाओं को भ्रामक किंवदन्तियाँ मानते थे तथा इन पर विश्वास नहीं करते थे। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में कुछ जीव वैज्ञानिकों द्वारा काली मछली से सम्बन्धित तथ्यों की प्रामाणिकता का पता लगाने के लिए शीतगृहों (कोल्ड स्टोरेज) में इन पर कुछ अभिनव प्रयोग किये गये, जिनके आश्चर्यजनक परिणाम सामने आये। सन् 1934 में विख्यात रूसी जीव वैज्ञानिक डॉक्टर बोरोडिन ने अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि काली मछली के सम्बन्ध में प्रचलित किंवदन्तियों और घटनाओं में काफी सच्चाई है। बोरोडिन के प्रयोगों के पूर्व विख्यात् जीव वैज्ञानिक, अमरीका के स्कोलेण्डर और उनके साथियों का यह दावा था कि किसी मछली को जमा देना और फिर इसके बाद उसका पुनः जीवित हो जाना असम्भव है। कुत्ते द्वारा, जमी हुई मछली को खा लेने और फिर जीवित उगल देने की बात पर ये लोग विश्वास नहीं करते थे, क्योंकि इस प्रकार की एक कहानी एस्किमोज की लोक कथाओं में मिलती है। इसी मध्य एक अमरीकी जीव वैज्ञानिक वाल्टर ने कुछ काली मछलियों को अलास्का के एक छोटे से ऐसे तालाब में डाला, जिसका पानी सर्दियों में पूरी तरह जम जाता था। इस तालाब के पानी

के जमने और फिर बाद में पिघलने पर मछलियों को मरा हुआ पाया गया। इससे अमरीकी जीव वैज्ञानिकों की धारणा और भी पक्की हो गयी, किन्तु काली मछली के सम्बन्ध में प्रचलित किंवदन्तियाँ और घटनाएँ सत्यता के इतने निकट थीं कि सरलता से इनका खण्डन भी नहीं किया जा सकता था।

डॉ. बोरोडिन ने अपने प्रयोगों में पाया कि काली मछली की तरह ही गोल्ड फिश, कार्प टेन्थ तथा इसी प्रकार की कुछ और भी मछलियाँ हैं जो बहुत अधिक ठण्डक में भी जीवित रह सकती हैं। इन्हें शून्य डिग्री सेल्सियस से कम तापक्रम उत्पन्न करके जमाया जा सकता है एवं पुनः जीवित किया जा सकता है। डॉ. बोरोडिन को अपने प्रयोगों से पता लगा कि काली मछली–20 डिग्री सेल्सियस तापक्रम पर भी 30 से 35 मिनिट तक जीवित रह सकती है, किन्तु यदि इसे इस तापक्रम पर एक घण्टे रखा जाए तो यह मर जायेगी। डॉ. बोरोडिन के अनुसार काली मछली पर ये प्रयोग ऐसे स्थान पर किये जाना चाहिए, जहाँ सूखी हवा हो, अर्थात् हवा में नमी का अंश मात्र भी न हो। क्योंकि नम हवा से इतनी अधिक ठण्डक में क्रिस्टल बन जाते हैं और क्रिस्टलों के सम्पर्क में आते ही काली मछली पुनः जीवित होने योग्य नहीं रह जाती। डॉ. बोरोडिन ने अपने अन्य प्रयोगों में इसके कारणों की खोज की तो पाया कि नमी वाले स्थानों पर काली मछली के सम्पूर्ण शरीर अथवा शरीर के किसी एक भाग को शून्य डिग्री सेल्सियस या इससे अधिक ठण्डा करने पर इसे अस्थिक्षय (नेक्रोसेस) नामक रोग हो जाता है। इस रोग के कारण इसके ऊतक इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं कि उनकी मरम्मत नहीं हो पाती।

डॉ. बोरोडिन के प्रयोगों के बाद कैलीफोर्निया के स्टोनहार्ट एल्वेरियम के जीव वैज्ञानिकों ने काली मछली पर अनेक प्रयोग किये और इन प्रयोगों में यह पाया कि काली मछली शून्य डिग्री सेल्सियस तापक्रम से कम तापक्रम में बारह घण्टे तक जमी रहने के बाद धीरे–धीरे तापक्रम बढ़ाने पर पिघलने लगती है और पुनः जीवित होकर तैरने लगती है, किन्तु एक दिन बाद स्वतः मर जाती है।

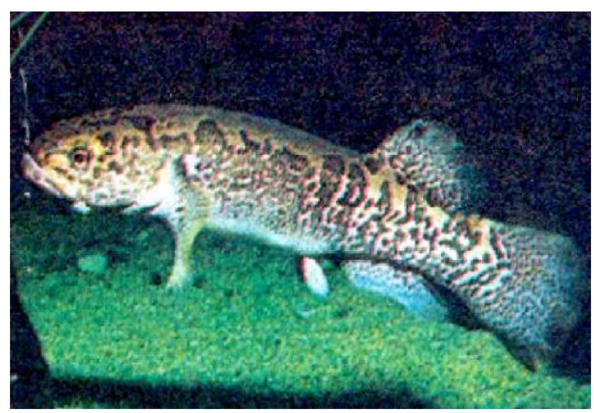

चित्र : अलास्का की काली मछली

काली मछली के सम्बन्ध में जीव वैज्ञानिकों का यह मत है कि इसे फ्रीज करने की गति और फ्रीजिंग के समय इसके शरीर में बर्फ के क्रिस्टल बनने की गति का इसके पुनर्जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। काली मछली की कोई विशिष्ट शारीरिक संरचना, आकार या रंग–रूप नहीं होता, किन्तु बर्फ में जम जाने के बाद जीवित हो रहने के अपने विशिष्ट गुण के कारण यह हमेशा जीव वैज्ञानिकों के लिए आकर्षण का केन्द्र रही है तथा आज भी विश्व के जीव वैज्ञानिक इसके रहस्य से पूरी तरह पर्दा नहीं उठा पाये हैं।

जल में भारी धातुओं से बढ़ती समस्यायें एवं उनका निदान

सुधीर कुमार शुक्ल, संजय कुमार एवं एस.के. अवस्थी

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

वर्तमान में जल में भारी धातुओं के बढ़ते सांद्रण से प्रदूषण की समस्या सम्पूर्ण विश्व के सामने उपस्थित है। जल ही 'जीवन' है। इस कथन की सार्थकता स्वयंसिद्ध है। जल पर्यावरण का एक अजैविक घटक है लेकिन प्राणी मात्र को जीवन प्रदान करता है। भारत में विश्व के धरातलीय क्षेत्र का लगभग 2.45 प्रतिशत, जल संसाधनों का 4 प्रतिशत तथा जनसंख्या का लगभग 16 प्रतिशत भाग पाया जाता है। पृथ्वी के लगभग तीन चौथाई हिस्से पर विश्व के महासागरों का अधिकार है। पृथ्वी पर उपलब्ध जल में से लगभग 2.70 प्रतिशत जल स्वच्छ है, जो झीलों, नदियों, मृदा एवं वनस्पतियों में मौजूद है एवं उपभोग के लिए उपलब्ध है। विभिन्न उद्योगों में प्रयोग होने वाली भारी धातुओं को नदियों तथा अन्य प्राकृतिक स्रोतों में बहा देने से भारी मात्रा में जल प्रदूषित हो रहा है। जल प्रदूषण का दुष्प्रभाव जलीय प्राणियों पर ही नहीं अपितु जन स्वास्थ्य पर भी बढ़ता जा रहा है। आज भारी धातु युक्त जल सेवन से हम अनेक रोगों जैसे– हैजा, टायफायड, पेचिस, यकृतशोध, अतिसार पीलिया एवं फीता कृमि आदि से जूझ रहे है। भारी धातु अन्य तत्वों की तरह धरती के प्राकृतिक घटक हैं इन्हे नष्ट नहीं किया जा सकता है। ये पृथ्वी की भूगर्भ में उपस्थित खनिज व चट्टानों में पाये जाते है जो कि घातक एवं विषैले होते है। कृषि कार्यों में अंधाधुंध रसायनों के प्रयोग एवं भूमि कटान इत्यादि के माध्यम से नदी के तलहट में ये एकत्रित होते रहते है, अंत में रिसकर भूजल में मिल जाते हैं। मिट्टी में उपस्थित सूक्ष्म जीव जल में घुलनशील यौगिक उत्पन्न करते हैं।

आज नदियों के साथ जो हो रहा है वही नीचे छुपे भूजल भण्डारों के साथ हो रहा है। वर्तमान में बढ़ते प्रदूषण से बी.ओ.डी. की सर्वाधिक मात्रा गंगा नदी में कानपुर एवं इलाहाबाद के मध्य पायी गई है। कानपुर के चमड़ा उद्योगों से निकलने वाला अपशिष्ट गंगा के पानी में मौजूद भारी धातु जैसे क्रोमियम की सांद्रता निर्धारित स्तर से कई गुना अधिक पायी गयी है। औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप आज अपशिष्ट सीधे नदियों, नहरों एवं तालाबों आदि में बहा दिये जाते हैं जिससे जल में रहने वाले जीव–जन्तुओं व पौधों पर बुरा प्रभाव पड़ता है साथ ही वह जल पीने योग्य नहीं रह जाता। सतह पर जल ही जल है किन्तु शुद्ध जल नहीं है। हर बार शुद्ध जल बाढ़ के कारण अशुद्ध होता जा रहा है तथा कुछ इंसानी फितरत की वजह से तो कुछ प्राकृतिक हलचलों से भू जल की गुणवत्ता में कमी आ रही है। धातु प्रदूषण से वर्तमान में जीवन पर दबे पाँव मौत की आहट है। विषाक्त धातु पारा खाद्य श्रृँखला में शामिल होकर जीवन में व्यवधान उत्पन्न कर रहा है। कीटनाशकों के रूप में प्रयोग हो रहा फिनाइल, मरकरी की सांद्रता, मछलियों की दर्जनों प्रजातियों में लगातार जम रहा है। जोकि पहले ही घातक स्तर पार कर चुका है। पारे के कई यौगिक कीटनाशक के रूप में काम करते है। फिनाइल मरकरी मछली अपने गलफड़े से अवशोषित करती है। बड़ी मछलियाँ जब छोटी मछलियों को खाती हैं तो उनके शरीर में पारे की मात्रा कई गुना अधिक हो जाती है। प्रदूषित मछलियों को खाने से पारा मानव शरीर के मस्तिष्क में जमा होने लगता है इससे अनेक खतरनाक

बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। शरीर में अधिक मरकरी की सांद्रता प्लाज्मा प्रोटीन एवं लाल रूधिर कणिकाओं से जुड़कर कोशिकाओं में पहुँचती है और एंजाइम को प्रभावित करने लगती है जिससे लकवा, दिमागी अपंगता, कैंसर एवं अंधापन हो सकता है। पादप एवं सूक्ष्म जलीय जीव भी इन्हें सोखकर पूरी खााद्य श्रृंखला में विष फैला रहें हैं। यूरोपीय देशों में ऐसी मछलियों के सेवन पर प्रतिबंध है, जिसमें पारे की मात्रा प्रति किलो एक मिग्रा से अधिक है। इस प्रकार बीमारियों को ध्यान में रखते हुए बाजार में बिकने वाली मछलियों की गुणवत्ता निर्धारित होनी चाहिए।

शहरी क्षेत्रों में जल संबंधी जरूरते अपशिष्ट जल के पुनर्चक्रण से पूरी की जा सकती हैं। इससे जल का संरक्षण तो होगा ही साथ में अपशिष्ट जल को प्रयोग में भी लाया जा सकेगा। प्राकृतिक संसाधनों की गिरती गुणवत्ता, प्राकृतिक आपदायें व शुद्ध पेयजल की आपूर्ति की लागत समाज की खराब सेहत, धन की बरबादी जैसे मदों में चुकानी पड़ती है। भारत के लिए आर्थिक नुकसान लगभग 3.75 ट्रिलियन रूपये प्रतिवर्ष है। स्वास्थ्य सर्वेक्षण के आँकड़ों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में 80 प्रतिशत से अधिक बीमारियाँ अशुद्ध पेय जल और गंदगी के कारण होती है।। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार प्रतिवर्ष 20 लाख से भी अधिक मौतें और करोड़ों लोगों में होने वाली बीमारियाँ जल प्रदूषण के कारण होती हैं। जैविक संसाधनों के संरक्षण और अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखने के प्रति जागरूकता बढ़ाकर शरीर में धातुओं के संचय को रोका जा सकता है। वर्तमान में भारत की शहरी आबादी यहाँ की कुल जलसंख्या की एक–तिहाई है। ऐसे में वर्ष 2020 तक क्या हालात होगी, जब देश के लगभग 50 प्रतिशत से अधिक आबादी शहरों में आकर रहने लगेगी।

वर्तमान में विश्व जल दिवस 22 मार्च को मनाया जाता है। लोगों को शुद्ध पेय जल मुहैया कराने के लिए जितने प्रयास किये जा रहें हैं वहीं मंजिल काफी दूर होती प्रतीत हो रही है। भारी धातुओं से प्रदूषित जल का सेवन करने से कंद्रिय तंत्रिका तंत्र, दिमाग, गुर्दा, त्वचा कैंसर, समय से पहले वृद्धा अवस्था, एवं किडनी फेल जैसे अनेक बीमारियाँ होती हैं। आज रासायनिक खाद, कीटनाशक व दवाइयों के अत्यधिक प्रयोग एवं जलवायु परिवर्तन से प्रदूषण में अत्यधिक वृद्धि हुई है। आज यह एक बड़ी त्रासदी ही है कि अभी तक इन समस्याओं का निदान नहीं हो पाया। हवा के बाद जल ही जीवन की सबसे बड़ी जरूरत है, लेकिन अशुद्धता बढ़ते रहने के कारण अधिक मात्रा में जल पीने लायक नहीं है। यह मानव की आज सबसे बड़ी चुनौती है। जल संरक्षण एवं प्रदूषण मुक्त करने के लिए आवश्यक कदम उठाने की आवश्यकता है। प्रभावशाली नीतियों और कानून बनाने होंगे साथ ही प्रभावी तरीके से लागू करने की आवश्यकता है जल बचत तकनीकों और विधियों के विकास के अतिरिक्त भारी धातुओं के प्रदूषण से बचाव के लिए भी प्रयास करने होंगे।

वर्तमान में भारत के 5161 नगरों में से 692 नगर गंगा बेसिन में केन्द्रित हैं। ज्ञातव्य है कि गंगा बेसिन में भारत की 37 प्रतिशत मानव जनसंख्या निवास करती है। देश में 27 नगरों की जनसंख्या एक लाख से अधिक हैं। नगरों तथा कस्बों से निस्कृत 1000 मिलियन लीटर अपशिष्ट जल प्रतिदिन गंगा में समाहित होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 1971 में पेयजल के लिए भैतिक एवं रासायनिक मानक निर्धारित किये हैं जिनके अनुसार पेयजल स्वच्छ, शीतल, स्वादयुक्त, गंधरहित एवं पी.एच. मान 7–8.5 मध्य होना चाहिए।

जल में भारी धातुओं के बढ़ते प्रदूषण के प्रभावों को देखते हुए इसका नियंत्रण नितांत आवश्यक है। जल ह्रास से न केवल जलीय जीव जन्तु बल्कि देश की अर्थ व्यवस्था, मानव स्वास्थ एवं मानव वनस्पतियाँ आदि भी प्रभावित होती है।

सारणी 1 : संयुक्त राज्य पर्यावरण सुरक्षा संगठन द्वारा निर्धारित मान एवं उन्नाव औद्योगिक क्षेत्र के जल का विश्लेषण मान

क्र. सं.	अपृष्य (Impurities)	उच्चतम निर्धारित सीमा (मि.ग्रा./लीटर)	विश्लेषण मान (मि.ग्रा./लीटर)
1.	पी.एच.	5.5–9.0	7.4
2.	कुल ठोस पदार्थ	2700	5500
3.	क्लोरीन	1	5.17
4.	जैव आक्सीजन माँग (बी.ओ.डी.)	30	102.9
5.	रासायनिक आक्सीजन माँग (सी.ओ.डी.)	250	480.5
6.	क्रोमियम	0.5	0.002
7.	क्रोमियम (VI)	0.1	0.32
8.	शीशा	0.1	0.02
9.	निकल	3.0	0.001
10.	ताँबा	3.0	0.004
11.	लोहा	0.10	0.017

(स्रोत – संजय कुमार एवं सहयोगी, 2009)

जल प्रदूषण नियंत्रण के निम्नांकित उपाय है

- भारी धातुओं पर आधारित औद्योगिक क्षेत्रों में संगध पौधों जैसे– जिरेनियम, खस, तुलसी, कैमोमिल, पामारोजा, जावा घास एवं मिंट की खेती की जा सकती है। ये पौधे भारी धातुओं की मौजूदगी में पैदा किए जा सकते हैं एवं बाजार में संश्लेषित उत्पादों पर आधारित प्राकृतिक उत्पाद को बेचा जा सकता है। संगध पौधों से एकल तेल से सौन्दर्य एवं अन्य हर्बल उत्पाद की माँग अधिक होने के कारण यह क्षेत्र वाणिज्य एवं व्यापार के लिए महत्वपूर्ण हो गया है।
- भारी धातुयुक्त जीवनाशी रसायनों के प्रयोग को परिसीमित कर समन्वित कीट प्रबन्ध प्रणाली को अपनाने की आवश्यकता है।
- प्रदूषित जल को शुद्ध करने के लिए खनिजीकरण के द्वारा अकार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित किया जाता है। इसके बाद कृत्रिम विधि से आक्सीजन जल में प्रविष्ट किया जाता है अथवा प्राकृतिक तौर पर उत्पन्न शैवालों द्वारा उत्पन्न आक्सीजन प्रयोग किया जाता है। यह आक्सीजन प्रकाश–संश्लेषण क्रिया में हरे शैवालों द्वारा उत्पन्न किया जाता है प्रदूषित जल में वे सभी तत्व उपस्थित होते हैं जिनकी शैवालों को अपनी वृद्धि के लिए आवश्यकता होती है। जैसे कार्बन, नााइट्रोजन, फास्फोरस, सल्फर एवं पोटेशियम इत्यादि, यह कार्य शैवालों तथा जीवाणुओं की सहजीविता द्वारा किया जाता है। शैवाल जीवाणुओं के लिए आक्सीजन उत्पन्न करते हैं तथा जीवाणु इस आक्सीजन का प्रयोग करके जटिल पदार्थों से अकार्बनिक पदार्थ बनाते है, जो शैवालों द्वारा प्रयोग किए जाते हैं।

जल प्लावित भूमि (वैटलैंड) विकास के लिए मात्स्यिकी–संतुलित पर्यावरण

पी.के. वार्ष्णेय एवं जे.के. जेना

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

जल प्लावित या नम भूमि (वैटलैंड) जल एवं भूमि को जोड़ने वाली कड़ी है। इन पारिस्थितिकीय नाजुक क्षेत्रों में तेजी से विघटन हो रहा है एवं पर्यावरण के खतरे का कारण बन रहे हैं। इनका संरक्षण आज की प्रमुख आवश्यकता है। यह बहते हुए या ठहरे हुए, स्थायी या अस्थायी दलदली क्षेत्र (Marsh, fen, peat land) होते हैं। यह प्राकृतिक या कृत्रिम दोनों ही प्रकार के होते हैं।

यह नमभूमि अत्यधिक उत्पादित पारिस्थितिकीय तंत्र हैं। इनकी तुलना जीव मंडल में उष्णकटबंधीय सदाबहार जंगलों से की जा सकती है। यह किसी भी क्षेत्र की पारिस्थितिकीय स्थिरता में अहम् भूमिका अदा कर सकते हैं। यह मनुष्य सभ्यता के अहम् भाग हैं एवं जीवन की अनेक जटिल आवश्यकताओं जैसे पीने का जल, प्रोटीन उत्पादन, जल शुद्धीकरण, ऊर्जा, चारा, जैवविविधता, बाढ़, वाहन, आमोद–प्रमोद, अनुसंधान व शिक्षा एवं वातावरणीय स्थिरता की आपूर्ति करते हैं। संसार में अनेक कारणों से इनका विनाश हो रहा है जिनमें जैविक व प्राकृतिक क्रिया भी सम्मिलित हैं। बढ़ती जनसंख्या, तीव्र मानव क्रिया, अव्यवस्थित विकास योजनायें, प्रबंधन का अभाव, उपयुक्त कानून एवं जागरूकता का अभाव इन पारिस्थितिकीय तंत्रों की कमी एवं विघटन के प्रमुख कारण हैं। इन्हीं कारणों से यह जल प्लावित क्षेत्र स्थायी रूप से समाप्त हो रहे हैं एवं इनके पुनः स्थापित करने की संभावनाएं भी खो रहे हैं। इससे कुछ क्षेत्रों में भयंकर विनाश हुआ है, जैसे वृहद स्तर पर बाढ़ द्वारा विनाश।

रामसार सम्मेलन 1971 में रामसार (ईरान) में हुआ था जिसमें 18 देशों ने भाग लिया था। अब इस संस्था में 150 देशों की भागीदारी है। रामसार सम्मेलन एक अन्तः सरकारी समझौता है जो कि इन क्षेत्रों के संरक्षण व उपयुक्त उपयोग व संसार में इन जलप्लावित क्षेत्रों के दीर्घकालीन विकास के लिए राष्ट्रीय प्रक्रिया व अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए दिशा निर्देश उपलब्ध कराता है।

भारत में पर्यावरण मंत्रालय के अनुसार वैटलैंड का क्षेत्रफल 4.1 मि. है. है। जिसमें 1.5 मि. है. प्राकृतिक एवं 2.6 मि. है. कृत्रिम है। उत्तर प्रदेश में 125 प्राकृतिक (12, 832 है.) एवं 28 कृत्रिम (2,12, 470 है.) वैटलैंड उपलब्ध हैं एवं खाली पड़े हैं।

वैटलैड के लाभ

वैटलैंड से अनेक लाभ हैं। दुर्भाग्यवश अक्सर उनको समझा नहीं गया है। इनके कुछ लाभ निम्नलिखित हैं :

- जीवन सहयोगी पद्धति
- अनेक चिड़ियों के लिए सर्दियों का आश्रय

- मछलियों व अन्य जीव जन्तुओं के लिए उपयुक्त प्रवास
- बाढ़ नियंत्रण के लिए उपयोग, गंदे पानी के उपचार हेतु, मिट्टी के भार को कम करना एवं अंतभूमि जल की पुनःत्रस्त्रीकरण
- अधिक प्रजाति विविधीकरण के कारण शिक्षा व विज्ञान के लिए महत्व
- आमोद–प्रमोद के लाभ (तैराकी, पर्यटन व गोताखोरी)

जोखिम

वैटलैंड के लिए प्रमुख जोखिक जीवीय व अजीवीय दबाव का बढ़ना

अजीवीय

- अतिक्रमण से क्षेत्रों में कमी
- जैविक दबाव के कारण प्रवासों का क्षरण एवं जैव विविधीकरण की हानि।
- अनियंत्रित तलमार्जन (dredging) से परिवर्तन।
- जल वैज्ञानिक हस्तक्षेप द्वारा भूमिजल रिसाव की हानि।

जीवीय

- अनियंत्रित सिल्टेशन एवं खरपतवार का उगना।
- अनियंत्रित गंदे पानी का निस्तारण, औद्योगिक श्रशव, सतहीय जलबहाव आदि से जलीय खरपतवार को नुकसान एवं जीव जन्तुओं पर विपरीत प्रभाव।
- ईंधन के लिए लकड़ी के कटाव के कारण मृदा हानि व वर्षा को प्रभावित करना, जल स्तर में उतार–चढ़ाव द्वारा अनेक जलीय प्रजातियों को हानि।
- प्रवासीय क्षेत्रों के विघटन से मछलियों की कमी एवं प्रवासी चिड़ियों की संख्या में कमी।

भारतीय वैटलैंड के प्रमुख तथ्य

- लगभग 1/3 भारतीय वैटलैंड समाप्त हो चुके हैं या विघटन के कगार पर हैं।
- तटीय वैटलैंड कुल मत्स्य उत्पादन का 12 प्रतिशत योगदान करते हैं।
- ''कियोलैडियो राष्ट्रीय पार्क", भरतपुर, राजस्थान, भारत का प्रमुख वैटलैंड हैं। यह कृत्रिम वैटलैंड विभिन्न प्रकार की प्रवासी चिड़ियों के प्रतिवर्ष आने के लिए जाना जाता है।
- उड़ीसा में ''चिल्का'' एक दूसरी प्रमुख वैटलैंड है। यह भारत की सबसे बड़ी (1, 100 किमी.^{2}) खारे पानी की झील है।

भारत में वैटलैंड का वितरण

भारत में कुल 67,429 वैटलैंड है। जिनका क्षेत्रफल लगभग 4.1 मि.है. (पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, 1990) है। इसमें 2,175 प्राकृतिक एवं 65,254 कृत्रिम वैटलैंड हैं। भौगोलिक क्षेत्र के अनुसार भारत में (नदियो के अलावा) 18.4 प्रतिशत वैटलैंड हैं जिसमें 70 प्रतिशत क्षेत्र में धान की खेती होती है। राज्यवार वैटलैंड का विवरण (चत्राई, 1992) तालिक में प्रस्तुत है।

भारत में वैटलैंड का स्तर एवं प्रभाव

वैटलैंड खाली हो रहे हैं एवं जैविक (anthropogenic) क्रियाओं जैसे, अव्यवस्थित बाहरी व कृषि विकास, औद्योगिक स्थल, रोड निर्माण, पोखर, संसाधनों में कमी एवं तलमार्जन (dredge) निकासी द्वारा दीर्घकालीन (substantial) आर्थिक एवं पारिस्थितिकीय कारण से हानि हो रही है। हवाई सर्वेक्षण के अनुसार 58.2 मि.है. में लगभग 40.9 मि. है. वैटलैंड में धान की खेती होती है। लगभग 3.6 मि. है. क्षेत्र मछली पालन के लिए उपयुक्त है जबकि 2.9 मि. है. आखेट (कैप्चर) मत्स्यकीय (मीठा व खारा जाल) में प्रयुक्त है। मैंग्रूव्स (समुद्री खरपतवार), इशचुरी व बैकवाटर में क्रमशः 0.4, 3.9 और 3.5 मि.है. वैटलैंड है। कृत्रिम तालाब आदि लगभग 3 मि. है. है। नदियां, प्रमुख सहायक नदियां (ट्रायबूटरीज) एवं कैनाल लगभग 28,000 कि.मी. है जबकि सिंचाई कैनाल की लम्बाई 1,13,00 कि. मी. है।

वाइल्ड लाइफ इंस्ट्टीट्यूट ऑफ इंडिया के आंकड़ों के अनुसार गंगा के फ्लड प्लेन में मीठे पानी की झाड़ियां एवं झीलों की विगत छः दशकों में 70–80 प्रतिशत की हानि हुई है। वर्तमान में केवल 50 प्रतिशत तक ही वैटलैंड बचे हैं। इनकी क्षति 2–3 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से हो रही है। भारतीय मैंग्रूव क्षेत्र 7,00,000 है. (1987) से लगभग आधे 4,53,000 है. (1995) में रह गये हैं।

इंडिया एवं एशियन वैटलैंड ब्यूरो ने 1995 में 147 वैटलैट क्षेत्र (साइट) प्रतिवेदित किये है। इन जगहों में से लगभग 32 प्रतिशत शिकारियों या उनसे संबंधित गतिविधियों के कारण क्षत्रिग्रस्त हुए हैं, जबकि 22 प्रतिशत मनुष्य के स्थापनाओं के कारण 19 प्रतिशत मात्स्यिकी व उससे संबंधित गतिविधियों व 23 प्रतिशत कृषि के लिए निष्कासित जल द्वारा हानि हुई। जलग्रहण क्षेत्रों में खरपतवार के निस्तारण से मृदा कटाव व सिल्टेसन से लगभग 15 प्रतिशत की हानि हुई है। औद्योगिक प्रदूषण से लगभग 20 प्रतिशत वैटलैंड की हानि हुई है (WCMC, 1998)। वर्तमान में रिमोट सेंसिंग पर आधारित गणना के अनुसार मैंग्रूव का मात्र 4,000 कि.मी. क्षेत्र ही भारत में उपलब्ध है।

भारत के विघटित वैटलैंड

भारत में लद्दाख, वुल्लर झील (जम्मू एण्ड कश्मीर), सोमोररी झील (जम्मू एण्ड कश्मीर), हारिके वैटलैंड (पंजाब), रोपार झील (पंजाब), पोइंट कैलिमेरे (तमिलनाडु), सांभर झील (राजस्थान), पूर्वी कोलकाता वैटलैंड (पश्चिम बंगाल) एवं आसन वैराज देहरादून (उत्तराखंड) प्रमुख विघटित वैटलैंड है।

वैटलैंड का विकास

वैटलैंड में मीठे पानी व खारे पानी की जैव विविधता को संरक्षित रखने के लिए अपार संभावनाएं हैं। यह सांद्रता, भूजल स्तर बनाने एवं पर्यटन के लिए भी आपेक्षित स्तर तक उपयोग में नहीं लाये गये हैं। अतः शीघ्र

ही यहां ध्यान देने की आवश्यकता है। यह समझा जा रहा है कि उपयुक्त संख्या में प्रत्येक राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में प्रमुख वैटलैंड को चिन्हित करके राज्य सरकारों से धन लेकर (उत्प्रेरक माडल) तैयार किये जायें।

वैटलैंड संरक्षण कार्यक्रम

देश की विघटित झीलों, पोखरों आदि को बचाने के लिए वन विभाग राज्य सरकारों ने साथ मिलकर कार्य किया है। वन विभाग ने 24 वैटलैंड चिन्हित किये हैं जहाँ शीघ्र ही संरक्षण एवं प्रबंधन की आवश्यकता है। राष्ट्रीय झील संरक्षण योजना – शहरी वैटलैंड का विघटन जो कि शहरीकरण एवं अन्य जैविक दबावों से होता है उनको इस योजना के तहत रखा गया है। वन विभाग ने राज्य सरकारों को कहा है कि इन क्षेत्रों का सर्वेक्षण कर क्षेत्रों का सीमांकन करें तथा यहाँ खरपतवार नियंत्रण, जल ग्रहण क्षेत्रों (catchment area) का सुधार करें, रेत निकालना (desiltation) जैव विविधता संरक्षण, प्रदूषण नियंत्रण, शिक्षा एवं जागरूकता व सामुदायिक विकास आदि गतिविधियों का अवलोकन करें। अनेक राज्यों में मुख्य सचिव की अध्यक्षता में संचालन समितियों का गठन हुआ है इन अद्भुत पारिस्थितिक तंत्रों (ecosystems) का वृहद् स्तर पर मनुष्यों के हस्तक्षेप से विघटन हुआ है। अतः मात्र 2/3 वैटलैंड ही शेष है।

वैटलैंड पारिस्थितिक तंत्र एवं मात्स्यिकी

वैटलैंड रामसार समझौता, एक अंत सरकारी संधि जिसमें 150 देश सम्मिलित हैं एफ.ए.ओ. व अन्य साथियों से साथ हुई, जिस में वैटलैंड में मात्स्यिकी एवं जलकृषि की महत्ता पर प्रकाश डाला गया। स्वस्थ वैटलैंड को उत्पादक मात्स्यिकी व जलकृषि की भूमिका के लिए उपयुक्त बतलाया गया। संसार में लगभग 1 बिलियन व्यक्तियों की जीविका मछली या शेल मछली (मोलस्क व क्रस्टेशियन) पर निर्भर करती है। यह उनकी प्रोटीन का प्रमुख स्रोत है। लगभग 35 मिलियन व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से (पूर्ण व अर्ध समय के लिए) मछली पकड़ने और जलकृषि से जुड़े हैं इनमें 95 प्रतिशत लोग विकसित देशों में रहते हैं। इनमें अधिकांश छोटे स्तर पर मत्स्य व्यवसाय में है। यहाँ 75 प्रतिशत व्यावसायिक महत्व की समुद्री व अन्तर्स्थलीय मत्स्य भंडारों का अधिक दोहन हुआ है। वर्तमान में अति–आखेट तथा समुद्री भोज्य पदार्थों की माँग भी विगत 60 वर्षों में 3 गुना बढ़ी है एवं यह विश्व की बढ़ती आबादी के परिपेक्ष में लगतार बढ़ती रहेगी।

वैटलैंड जटिल एवं अत्यंत अस्थिर तंत्र हैं। इनके मौसमी व वार्षिक गुण भी भिन्न हैं इन परिवर्तित गुणों में जल स्तर का उतार चढ़ाव, परिवर्तनीय जलीय खरपतवार की अधिकता, जीव–जन्तुओं की विभिन्न अवस्थाएं एवं प्रमुखतः भौतिक रासायनिक गुण सम्मिलित हैं।

वैटलैंड अत्यंत परिस्थितकीय उत्पादक तंत्र है। जिनकी तुलना उष्ण कटिबंधीय जीव मंडल में सदाबहार जंगलों से की जा सकती है। यह क्षेत्र को पारिस्थितिकीय स्थिरता प्रदान करने में अहम भूमिका अदा कर सकते हैं। वैटलैंड भूमि तथा जल के मध्य का अन्तरवर्ती क्षेत्र है जहाँ जल की सांद्रता एवं प्रभाव मिट्टी की प्रकृति एवं जीव जन्तओं की सामुदायिक किस्म, जो वहाँ प्रवास करते हैं के विषय में बतलाता है। एक वैटलैंड पारिस्थितकीय से सूक्ष्म जन्तुओं, पौधों, कीड़े–मकोड़ों, एम्फीबियन, रैपटाईल, चिड़ियों, मछलियों तथा स्तनधारी की अनेक प्रजातियां जुड़ी होती है।

जीव जन्तुओं की अनेक प्रजातियों के लिए वैटलैंड में भरपूर भोजन उपलब्ध होता है। यह जन्तु वैटलैंड में जीवन का कुछ भाग या संपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। मृत पौधे, पत्तियाँ, तने, छाल आदि टूट कर जल में जाते हैं जहाँ वे छोटे–छोटे जैविक कणों में परिवर्तित हो जाते हैं जिन्हें ''डैटराइट्स'' कहते है। यह समृद्ध पदार्थ अनेक छोटे जलीय कीड़े–मकोड़ों शेल मछलियों एवं छोटी मछलियों का भोजन बनता है तत्पश्चात् यह जीव बड़ी मछलियों रैपटाईल, एम्फीबियन, चिड़िया एवं स्तनधारियों द्वारा शिकार किये जाते हैं। इन पारिस्थितिकीय तंत्रों को अब प्रतिबंधित कर देना चाहिए।

वैटलैंड पारिस्थितिकीय तंत्रों में अपार भोजन उपलब्ध है जो कि जन्तुओं की अनेक प्रजातियों, शेल मछली, छोटी मछली तथा शिकारी मछलियों को आकर्षित करता है। इन जल प्लावति क्षेत्रों में मत्स्य आखेट व जलकृषि की विधियों का प्रबंधन के तहत लागू कर सफलतापूर्वक इनका उपयोग किया जा सकता है।

मत्स्य आखेट

प्राकृतिक रूप से वैटलैंड के अपने जीव जन्तु होते हैं जहाँ समुचित गहराई हो तो मत्स्य आखेट किया जा सकता है। मत्स्य आखेट में प्राकृतिक जीव जन्तुओं (मछलियों) को विभिन्न प्रकार के जालों जैसे कास्ट नैट, गिल नैट, पारम्परिक पिंजरे (ट्रैप) ट्राल, गेयर, सीन आदि से शिकार किया जाता है। जो जगह आमोद–प्रमोद के लिए उपयुक्त हो वहाँ एंगलिग, र्स्पोट फिशिंग तथा पर्यटन का समावेश भी किया जा सकता है। रंग बिरंगी सजावटी मछलियों एवं पौधों का, जो अछूते हैं का भी शिकार किया जा सकता है।

वैटलैंड में जाल चलाने में मुख्यतः खरपतवार की बाधा आती है। शिकार में असफलता के मुख्य कारण जाल का फटना व जाल का खरपतवार में फसना आदि है। इन खरपतवार का प्रमुख कारण वहाँ जल व मृदा में पोषक तत्व नाइट्रोजन व फॉस्फोरस की अधिक मात्रा का होना है। यह पोषक तत्व समय के साथ–साथ धीमें–धीमें प्राकृतिक रूप से हमेशा बढ़ते रहते हैं।

फ्लडप्लेन क्षेत्रों में परिधि पर गिल नैट का उपयोग किया जा सकता है। फ्लड पलेन क्षेत्रों के पास पोखर या तालाब जैसे क्षेत्रों में तेज वर्षा में मछलियाँ फंस जाती हैं। अतः ऐसी जगहों पर बांस के पिंजरे/मशीनी पिंजरे आदि को भी मछली के शिकार के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। झाड़ियों में ये पिंजरे सफलतापूर्वक काम करते हैं।

झीगों व केकड़े की रात्रि में तलहटी में रेंगने की आदत के कारण यहाँ पिंजरे (ट्रैप) अति उपयोगी होते हैं। गहरे पानी की वैटलैंड में अधिकांश रूप से गिल नैट का उपयोग होता है।

जलकृषि

वैटलैंड में जलकृषि भी संभव है। परन्तु उसके लिए खरपतवार का उन्मूलन आवश्यक है। खरपवतवार उन्मूलन के अनेक तरीके उपलब्ध है जिनमें प्रमुख हैं : यांत्रिकी, रासायनिक तथा जैविक। इन क्षेत्रों के लिए प्रमुख जलकृषि विधियां निम्न हैं।

पैन कल्चर

पैन एक स्थिर बाँध होता है। इसमें तलहटी जल का प्रमुख भाग होता है। यहाँ पैन का मतलब बांध से ही है। वैटलैंड पोषक प्रधान होते हैं अतः पैन कल्चर यहाँ के लिए महत्वपूर्ण तकनीकी है। वैटलैंड में प्राथमिक उत्पादन अधिक होता है। अतः यह क्षेत्र मत्स्य भोजन के लिए प्रसिद्ध हैं जिसके कारण यहाँ विभिन्न प्रकार की मछलियां आकर्षित होती हैं। विशिष्ट क्षेत्र को जाल के द्वारा प्रतिबंधित कर उसमें से खरपतवार का उन्मूलन कर जलकृषि के लिए पैन कल्चर के रूप में चिन्हित कर लिया जाता है।

यह वैटलैंड पैन मत्स्य पालन की सादा तकनीक हैं जहाँ मछली या शेल मछलियों के छोटे बच्चों का संवर्धन कर इन क्षेत्रों की क्षमता का उपयोग कर भविष्य में मुनाफा कमाया जा सकता है। इन जलों में पालन योग्य प्रमुख मत्स्य प्रजातियां भारतीय व चाइनीज कार्प, ईल, कैटफिश, मिल्कफिश, मलैट्स, टिलेपिया तथा मीठे व खारा पानी के झींगे आदि हैं।

केज कल्चर

वैटलैंड में यदि जल की गहराई केज लगाने के लिए आपेक्षित स्तर तक है तो यहाँ केज कल्चर की संभावनाए हैं। यद्यपि, केज कल्चर शुरू करने से पूर्व यहाँ भी खरपतवार को दूर करना अति आवश्यक है। केज सख्त तलहटी के बनाये जाते हैं एवं इसका ढांचा खरपतवार को ढकेल देता है तथा पानी को केज में आने देता है अतः यह पानी जलकृषि के उपयोग में लाया जा सके।

केज कल्चर का मुख्य उद्देश्य 2–3 महीनों में जीरे व फ्राई को अंगुलिका में संवर्धन करना है। यहाँ अधिक प्रोटीन युक्त भोजन देकर सघन संचय विधि को अपनाया जाता है। प्राकृतिक भोजन की उपलब्धता एवं परिपूरक आहार देने से मछलियों की विकास दर बढ़ जाती है। वैटलैंड केज कल्चर में रोहू, कतला, मिरगल, सिल्वर, ग्रास व कामन कार्प का जीरा या फ्राई का संवर्धन किया जाता है। इस तकनीक द्वारा जमीन पर नर्सरी के दबाव को कम किया जा सकता है।

वैटलैंड के पास तालाब का बनाना

फ्लड प्लेन या लैगून (नदी या समुद्र के किनारे) के क्षेत्रों के तालाब स्वतः ही जल स्तर में उतार चढ़ाव के कारण भर जाते हैं। यदि संभव हो सके तो पंप करके भी आवश्यकतानुसार तालाब में पानी भरा जा सकता है। यह भी मत्स्य पालन के लिए उपयोगी है।

रैफ्ट कल्चर

वैटलैंड में बाड़ा बनाकर (Raft and stake) भी मछली आदि पालन की संभावनाएं है। इस प्रकार से काल्म व आयस्टर आदि का पालन किया जा सकता हैं।

समन्वित जलकृषि

वैटलैंड जो कि बेकार भूमि हैं को समन्वित जलकृषि के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। यहां मछली के साथ कृषि (मखाना, धान आदि) या जीव पालन (मुर्गी, बत्तख, डेरी आदि) को अपनाया जा सकता है। इस प्रकार के मिक्स्ड फार्मिंग में संसाधनों का भरपूर उपयोग होता है। इस प्रकार फसलों के विविधीकरण

भारत के वैटलैंडों का राज्यवार विवरण

क्र. सं.	राज्य	प्राकृतिक क्षेत्रफल		कृत्रिम क्षेत्र क्षेत्रफल	
		संख्या	(है.)	संख्या	(है.)
1.	आन्ध्र प्रदेश	219	100457	19020	425892
2.	अरूणाचल प्रदेश	2	20200	उपलब्ध	उपलब्ध नहीं
3.	असम	1394	86355	उपलब्ध	उपलब्ध नहीं
4.	बिहार	62	224788	33	48607
5.	गोवा	3	12360	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं
6.	गुजरात	22	394627	57	129660
7.	हरियाणा	14	2691	4	1079
8.	हिमाचल प्रदेश	5	702	3	19165
9.	जम्मू एवं कश्मीर	18	7227	उपलब्ध नहीं	21880
10.	कर्नाटक	10	3320	22758	539195
11.	केरला	32	24329	2121	210579
12.	मध्य प्रदेश	8	324	53	187818
13.	महाराष्ट्र	49	21675	1004	279025
14.	मणिपुर	5	26600	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं
15.	मेघालय	2	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं
16.	मिजोरम	3	36	1	1
17.	नागालैंड	2	210	लागू नहीं	लागू नहीं
18.	उड़ीसा	20	137022	36	148454
19.	पंजाब	33	17085	6	5391
20.	राजस्थान	9	14027	85	100217
21.	सिक्किम	42	1107	2	3
22.	तमिलनाडु	31	58068	20030	201132
23.	त्रिपुरा	3	575	1	4833
24.	उत्तर प्रदेश	125	12832	28	212470
25.	पश्चिम बंगाल	54	291963	9	52564
	केन्द्र शासित				
26.	चंडीगढ़	µ	µ	1	170
27.	पंडुचेरी	3	1533	2	1131
	कुल योग	**2170**	**1460113**	**65254**	**2589266**

से अतिरिक्त भोजन के साथ अधिक मुनाफा प्राप्त होता है। इस पद्धति की प्रमुख विशेषता है कि यह मत्स्य कृषक की सामाजिक–आर्थिक–स्थिति को सुधारता है।

उत्तर प्रदेश का बायो इनर्जी मिशन सैल तेल कंपनियों के संयुक्त तत्वाधान में अन–उत्पादित व अनउपयोगी ''बैरन'' व ''सोडिक'' भूमियों का बायो फ्यूल फसल उत्पादन के लिए पी–4 (पब्लिक–पाईवेट–पंचायत–पार्टनरशिप) मॉडल पर कार्य कर रहा है। वे पंचायतों के पास उपलबध वैटलैंड के संपर्क में आये हैं। अतः आपके द्वारा इन किसानों को जलकृषि में शिक्षण का प्रस्ताव रखा गया है। जिससे कि इन वैटलैंडों को उपयोग में लाया जा सके व साथ–साथ इसका संरक्षण भी हो सके।

भारत के पश्चिमी घाट (वेस्टर्न घाट) क्षेत्र की मत्स्य विविधता एवं संरक्षण–एक परिचय

राजेश दयाल, एस.पी. सिहं, ए.के. पाठक, रीता चतुर्वेदी एवं यू.के. सरकार

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

यूनेस्को (UNESCO) द्वारा घोषित आठ "विश्व विरासत स्थल" में से भारत में स्थित पश्चिमी घाट एवं पूर्वोत्तर क्षेत्र अपनी जैवविविधता के लिए जाना जाता हैं। यह क्षेत्र अपनी प्राकृतिक सम्पदा तथा यहाँ पर पाये जाने वाले वनस्पति एवं जीव–जन्तुओं की विविध प्रजातियों के लिए विख्यात है। यह क्षेत्र इन विभिन्न जैव प्रजातियों का प्राकृतिक वास–स्थल भी है। इनमें से कुछ प्रजातियाँ विशेष हैं जो कि विश्व के अन्य किसी स्थान पर नहीं पायी जाती है। यहाँ पर 5000 से अधिक प्रजातियों के पुष्प पौधे, 139 स्तनधारी जीव, 508 पक्षी प्रजातियां, 179 उभयचरी जीव तथा अन्य प्रजातियाँ पायी जाती है। यहाँ पर पाये जाने वाले समस्त वनस्पति एवं प्राणी जगत जीवों मे से 325 प्रजातियों का जीवन संकटापन्न के दायरे में आता है, जिनमें से अधिकतर प्रजातियाँ स्थानीय हैं।

भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु

पश्चिमी घाट को सहाद्री के नाम से भी जाना जाता है। यह क्षेत्र 1600 किमी. लम्बाई में भारत के पश्चिमी तट पर गुजरात से तमिलनाडु के कन्याकुमारी तक फैला हुआ है। 1,60,000 वर्ग किमी. में फैले हुए पश्चिमी घाट में भारत के विभिन्न राज्यों के आंशिक क्षेत्र आते हैं जिनमें गुजरात, महाराष्ट्र, गोआ, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं केरल सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त श्रीलंका के भी कुछ क्षेत्र आते हैं। यहाँ की जलवायु समुद्र तल के सापेक्ष ऊँचाई एवं भूमध्यरेखा से दूरी पर निर्भर करती है। 1500 मी. से कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों की जलवायु नम एवं गर्म रहती है जबकि 1500 से 2000 मी. वाले क्षेत्रों का तापमान शीतल रहता है। तथा शीतकाल में तापमान 0°से. तक पहुँच जाता है। सामान्यतया समस्त क्षेत्र का औसत तापमान 15–24°से. तक रहता है। जून से सितम्बर तक यहाँ पर मानसून रहता है, यहाँ की औसत वर्षा 3000 से 4000 मिमी. हैं तथा कुछ स्थानों पर यह 9000 मिमी. तक पहुँच जाती है। पश्चिमी घाट के पूर्वी क्षेत्र में कम वर्षा वाले क्षेत्र है जहाँ की औसत वर्षा 1000 मिमी. रिकार्ड की गयी है। यहाँ के वन क्षेत्रों को चार भागों में बाटा गया है। सम्पूर्ण क्षेत्र को 38 पूर्ववर्ती तथा 27 पश्चिमवर्ती नदियाँ आच्छादित करती हैं। यह सभी नदियां वर्षा जल पोषित हैं तथा इनमें से अधिकतर नदियों में पानी साल भर रहता है।

जैवविविधता

उपलब्ध आकड़ों के अनुसार सम्पूर्ण पश्चिमी घाट क्षेत्र शोधकर्ताओं को आकर्षित करता रहा हैं। उन्नीसवीं शताब्दी से लेकर वर्तमान समय तक अनगिनत प्राकृतिक एवं मत्स्य विज्ञानियों ने यहाँ पर पायी जाने वाली प्राकृतिक सम्पदाओं का आकंलन एवं लेखा–जोखा तैयार किया हैं जो कि यहाँ के दुर्लभ वन्य एवं जीव सम्पदा को दर्शाता हैं तथा विश्व के वैज्ञानिकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। यहाँ पर 5000 से अधिक

पुष्पित पौधों की प्रजातियाँ, 137 स्तनधारी जीव प्रजातियाँ, 508 प्रजातियों के पक्षी, 181 उभयचरी जीव तथा 203 सरीसृप प्रजातियाँ पायी जाती हैं, इनमें से कई प्रजातियाँ स्थानीय एन्डेमिक हैं, तथा अन्य किसी स्थान पर नहीं पाये जाते हैं, अतः यह प्रजातियाँ अपने आप में विशेष महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय हैं। यद्यपि पश्चिमी घाट भारत के क्षेत्रफल का 5 प्रतिशत है फिर भी समस्त ऊँचे वृक्षों की प्रजातियों (4000–5000 प्रजातियाँ) का 27 प्रतिशत यहाँ पर पाया जाता है। विभिन्न शोध अध्ययनों एवं आकड़ा सग्रंह के आधार पर यहाँ पर पाये जाने वाले समस्त जीवों मे से 325 प्रजातियों का जीवन संकटग्रस्त है।

जैवविविधता में स्थानीय एन्डेमिक प्रजातियों का महत्व

यहाँ की जैवविविधता में स्थानीय प्रजातियों की बहुलता है। जूलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया (जेड.एस. आई.), 2012 की रिपोर्ट के अनुसार स्थानीय प्रजातियों की उपस्थिति उल्लेखनीय है जो यहाँ की विशेषता को दर्शाती हैं। विभिन्न जीव वर्गों में स्तनधारी 11.7%, पक्षी प्रजातियाँ 3%, सरीसृप 61.8%, उभयचरी 87.8%, मछली 65%, स्थलीय घोंघे 76%, मीठे जल वाले घोंघे 36%, तितलियाँ 11% एवं ओडोनाटा वर्ग में आने वाले 39.6% प्रजातियाँ स्थानीय हैं।

मत्स्य जैवविविधता

सम्पूर्ण पश्चिमी घाट क्षेत्र सभी क्षेत्रों के शोधकर्ताओं के आकर्षण का केन्द्र रहा है, सर फ्रांसिस डे से लेकर वर्तमान समय तक अनगिनत मत्स्य विज्ञानियों ने यहाँ पर पाये जाने वाले समस्त जैव विविधिता से जुड़ी मत्स्य सम्पदा का आकंलन एवं लेखा जोखा प्रस्तुत किया है जो कि यहाँ कि अमूल्य मत्स्य जैव–निधि को दर्शाता एवं रेखांकित करता है तथा आधुनिक वैज्ञानिकों एवं शोधकर्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करता है। उन्नीसवीं शताब्दी में सर फ्रांसिस डे ने भारत में पाये जाने वाले विभिन्न मत्स्य प्रजातियों को सूचीबद्ध करने का काम प्रारम्भ किया एवं इस क्रम में उन्होनें पश्चिमी घाट क्षेत्र की प्रजातियों को भी सूचीबद्ध किया। इस कार्य को आगे बढ़ाते हुए विभिन्न मत्स्य शोधकर्ताओं ने इस क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाली नदियों, झीलों तथा अन्य जल क्षेत्रों के अध्यनोपरान्त मत्स्य प्रजातियों का सूची करण एवं वर्गीकरण किया। इन शोधकर्ताओं में पिल्ले (1929); होरा एवं ला (1941); होरा (1942); साइलस (1951); जयराम (1981); तलवार एवं झिगंरन (1991); कोटवाल (1994); चक्रवर्ती (1996); गोपी (1996); साजी (1996); अरूण (1997); डेनियल (2001); बापूराव (2011); श्रीकांत; धानुकर आदि प्रमुख है। इन सभी शोधकर्ताओं का कार्य सीमित क्षेत्र, सीमित जल क्षेत्र, विभिन्न नदियों पर आधारित था किन्तु कुछ शोधकर्ताओ ने समस्त पश्चिमी घाट की मत्स्य प्रजातियों की संकलित सूची प्रकाशित की जिनमें डेनियल (2011) ने 218 प्रजातियों; साजी (2001) ने 287 प्रजातियों तथा श्रीकांत ने 318 मत्स्य प्रजातियों का संकलित लेखा–जोखा प्रकाशित किया। समय–समय पर विगत कुछ वर्षों में नई प्रजातियों की खोज हुयी जो कि पूर्व प्रकाशित सूची में सम्मिलित नहीं थीं।

वर्तमान अध्ययन में राष्ट्रीय मत्स्य अनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ में ऊपर दिये गये सभी शोधपत्रों एवं प्रकाशित पुस्तकों के अध्यनोपरान्त पश्चिमी घाट में पाये जाने वाले मत्स्य प्रजातियों पर एक वृहद डाटा संग्रह तैयार किया गया। जिसमें कुल 380 मत्स्य प्रजातियों को सूचीबद्ध किया गया जो कि 46 फैमिली एवं 146 जीनस के अर्न्तगत आती हैं तथा इनकी मुख्य जानकारी को सम्मिलित किया गया है। इनमें से 135 प्रजातियाँ (35.54%) स्थानीय एन्डेमिक एवं 9 प्रजातियाँ विदेशी मूल की हैं। इस सूची में विदेशों से आयातित एक्वेरियम में पाले जाने वाली रंगीन मछलियों को शामिल नहीं किया गया है। उपरोक्त 380 मत्स्य प्रजातियों

को सूचीबद्ध करते समय यह ध्यान दिया गया कि केवल मुख्य नाम (वैलिड नेम) को ही शामिल किया जाये तथा उपनाम (सिनोनिम) को सम्मिलित न किया जाये ताकि सूची में प्रजाति का नाम एक ही बार आये।

उपरोक्त सूची का विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि 11 कुलों की केवल 1 प्रजाति; 12 कुलों की केवल 2 प्रजातियाँ; 5 कुलों की 3 प्रजातियाँ; 4 कुलों की 5 प्रजातियाँ एवं अन्य 4 कुलों की 6 प्रजातियाँ इस क्षेत्र में पायी जाती है। इसके अतिरिक्त शेष 6 कुलों में क्रमशः 7, 13, 17, 25, 37 व 171 प्रजातियाँ पायी जाती है। सबसे बड़ा कुल 'साइपिरीनिडी' है जिसकी 171 प्रजातियाँ पायी जाती हैं।

जिन 9 प्रजातियों की खोज सन 2006 के उपरान्त हुयी है उनके नाम हैं: *सिस्टयूरा नैगोडियेन्सिस, सिस्टयूरा सरावेयेन्सिस, साइलोरिकस टेन्यूरा, पुनटियस रोहानि, गारा इमारजिनेटा, गारा मलापैरियेन्सिस, होमालोपटेरा साइलासि, सीडोलेगूविया आस्ट्रीना* तथा *पुनटियस मधूसूदनि,* है।

आई.यू.सी.एन. (2012) के आधार पर समस्त मछलियों के संकटापन स्थिति का विवरण एकत्रित किया गया जिसमे यह पाया गया कि 52 प्रजातियाँ लुप्तप्राय वर्ग के अन्र्तगत आती हैं। वास–स्थल के अध्ययन से यह पता चलता है कि 278 प्रजातियाँ मीठाजल, 13 प्रजातियाँ शीतजल, 2 प्रजातियां खाराजल तथा 12 प्रजातियाँ समुद्री जल में निहित पायी जाती है। शेष 75 प्रजातियाँ 1 से अधिक जल क्षेत्रों में विचरण करती है।

मत्स्य प्रजातियों का आर्थिक महत्व

यह सभी प्रजातियाँ अपने आप में विशेष महत्व रखती है मानव उपयोग के आधार पर कुछ प्रजातियाँ खाने योग्य होती हैं जो कि मात्स्यिकी से प्राप्त होती हैं, कुछ प्रजातियाँ आखेट योग्य तथा अन्य प्रजातियाँ एक्वेरियम फिश के रूप में प्रयोग की जा सकती हैं। इनमें से कुछ मछलियाँ ऐसी भी हैं जो कि कम समय में अधिक वृद्धि करती हैं तथा इनके प्रजनन तकनीक का विकास करके, तालाबों में पालनयोग्य किया जा सकता है। इनमें से प्रत्येक प्रजाति पारिस्थितिकी तथा आर्थिक दृष्टिकोण से महत्तवपूर्ण हैं। इनका समुचित उपयोग करके क्षेत्रीय रोजी–रोजगार का सृजन किया जा सकता है जोकि क्षेत्र विशेष एवं समूचे देश की बेरोजगारी एवं कुपोषण की समस्या को कम करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

मत्स्य प्रचुरता पर विकासशील योजनाओं का प्रभाव एवं संरक्षण

वर्तमान में सम्पूर्ण पश्चिमी घाट का विभिन्न योजनाओं के अन्र्तगत विकास हुआ है जिसके कारण अनेकों जलक्षेत्र अवरूद्ध हुए है, नदी के तट पर नयी कालोनियों का विकास हुआ है तथा जल प्रदूषण बढ़ा है। जिसके फलस्वरूप मछलियों का प्राकृतिक वास स्थल प्रभावित हुआ है तथा उनका जीवन सकंट में पड़ गया है। अत्यधिक दोहन के कारण बहुत सी प्रजातियों की प्रचुरता खतरे में पड़ सकती है। अतः यह आवश्यक है कि इन प्रजातियों का समुचित संरक्षण किया जाये।

केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार के अन्र्तगत आने वाले विभागों द्वारा समस्त पश्चिमी घाट क्षेत्र के संरक्षण एवं विकास के लिए 2 बायोस्फीयर रिजर्व, 13 राष्ट्रीय उद्यान तथा कई वन्यजीव अभ्यरारण्य की स्थापना की गई है, व्यवाहारिक रूप में वन्य क्षेत्र एवं वन्य जीव को तो सख्त कानून के अन्र्तगत संरक्षण प्राप्त है परन्तु पुराने कानून एवं जन जागरूकता के अभाव में मत्स्य जैव विविधता संरक्षण इससे वंचित रह जाता है अतः यह आवश्यक है कि पुराने कानून में संशोधन कर मत्स्य सम्पदा का संरक्षण किया जाये। मत्स्य प्रजातियों के पुर्नवास हेतु विशेष हैचरियाँ तथा सजीव मत्स्य जीन बैंक स्थापित किये जायें।

डिजिटल प्रणाली के आधार पर स्वचालित इलेक्ट्रॉनिक कुंजी का निर्माण एवं मत्स्य प्रजातियों को पहचानने में इनका अनुप्रयोग

अजय कुमार पाठक, राजेश दयाल, एस.पी. सिंह एवं रीता चतुर्वेदी

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

डिजिटल प्रणाली का विकास मत्स्य प्रजाति की पहचान, मत्स्य प्रबंधन और संरक्षण की दिशा में एक प्राथमिक कदम है। सन् 1960 से मात्स्यिकी के लिए, मत्स्य प्रजाति की पहचान, खाद्य एवं कृषि संगठन कार्यक्रम का एक प्रमुख विषय रहा हैं। इस प्रकार किसी भी जैविक अध्ययन के लिये प्रमुखतः जगंली समुदायों के लिए सही प्रजाति की पहचान एक शुरूआत है। पखना–सूत्र (फिन फार्मूला) मात्स्यिकी शोध के अर्न्तगत प्रजातियों को पहचानने एवं समुदायों के अध्ययन मे अहम भूमिका निभाती है। प्राकृतिक रूप से अज्ञात जैविक नमूनों को विभिन्न विधियों जैसे विशेषज्ञों की सलाह, चिन्हित नमूनों से तुलना और कुंजियों के प्रयोग से पहचाना जाता है इन सभी विधियों में वर्गीकरण के अर्न्तगत सबसे भरोसमंद विधि टैक्सोनोमिक कीज़ (वर्गीकरण कुंजियों) का प्रयोग है। टैक्सोनोमिक कीज़ की मुख्य शुरूआत प्रारम्भ मे जीन डे लामार्क ने सन् 1778 में की। बहुत सी टैक्सोनोमिक कुंजियाँ मछलियों की मारफोमेट्रिक और मेरिस्टिक लक्षणों पर आधारित है, जो कि मत्स्य प्रजातियों को पहचानने में अहम भूमिका निभाती हैं जिसके माध्यम से नमूनों की पहचान आसानी से की जा सकती है। इस प्रकार ये लक्षण मत्स्य प्रजातियों के बीच सम्बन्ध और विभिन्नताओ को मापने के लिए एक शक्तिशाली यंत्र है। इसी कारण से मारफोमोट्रिक और मेरिस्टिक लक्षणों को प्राकृतिक इतिहास ज्ञाताओं द्वारा प्रजातियों और विभिन्न समुदायों की प्रजातियों के बीच पहचान सम्बन्धी आंकलन करने के लिए विस्तृत रूप में प्रयोग किया जाता रहा है।

इस प्रकार जो लोग इस क्षेत्र मे विशेषज्ञ नहीं है, उनके लिए मत्स्य प्रजातियों की सही पहचान फिन फार्मूलों की व्याख्या और लिखित विवरणों से करना, अत्यन्त कठिन और समय व्यर्थ करने के समान है। स्वाचालित डिजिटल प्रणाली का अनुप्रयोग प्रजातियों की पहचान करने में एक अहम भूमिका निभाता है। डिजिटल प्रणाली की नई तकनीकियों से प्रजाति को पहचानने की चुनौती को आसानी से स्वीकार किया जा सकता हैं। यही कारण है कि आजकल बहुत से शोध कार्यों में समय बचाने और कार्य में प्रमाणिकता लाने हेतु संगणको का प्रयोग किया जाता है।

इस शोध पत्र में लेखकों ने संगणक के उपयोग से पखनेदार मछलियों को पहचानने के लिए एक स्वचालित इलेक्ट्रॉनिक कुंजी प्रणाली के विकास के विवरण का उल्लेख किया है। संचालन के आधार पर यह सुझाव दिया जाता है कि इस निकाय का उपयोग अन्य देशों की पखनेदार मछलियों की पहचान हेतु भी किया जा सकता है। बशर्ते मछलियों के पखनों से सम्बन्धित सूचना उपलब्ध हो।

पखनेदार मछली के नमूनों की पहचान हेतु स्वचालित इलेक्ट्रॉनिक कुंजी प्रणाली के विकास के लिए लेखकों ने सम्बन्धित विषय पर विभिन्न प्रकाशित विभिन्न स्रोतों को प्रयोग करके एक इलेक्ट्रॉनिक–कुंजी

डेटा–बेस का निर्माण किया है। इस डाटाबेस का निर्माण विडोंज आपरेटिंग सिस्टम के तहत एम एस एक्सेस–2000 (MS-ACCESS 2000) का प्रयोग करते हुए किया है। इलेक्ट्रॉनिक कुंजी प्रणाली के निर्माण मे विजुएल बेसिक 6.0 का उपयोग करके नमूनों को पहचानने के लिए एक एप्लीकेशन इण्टरफेस का निर्माण किया गया है। इस इंटरफेस में विडोंज के कम्पोनेन्ट्स का इस्तेमाल प्रयोगकर्ताओं को आसानी से इण्टरैक्टिव व नेवीगेशन विकल्पों द्वारा नमूनों की त्वरित पहचान हेतु सुविधा प्रदान करता है। इस इलेक्ट्रॉनिक कुंजी सिस्टम को विडोंज आपरेटिंग प्रणाली के तहत सीडी द्वारा इन्सटॉल और संचालित किया जा सकता है। इस प्रणाली के विकास में पखना सूत्रों एवं 11 अन्य मारफोमेट्रिक गुणों पर इलेक्ट्रॉनिक कुंजी डेटाबेस तैयार किया गया है। यह निकाय अभी 837 पखनेदार मत्स्य प्रजातियों की सटीक पहचान करने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।

विकास गीत

इन्द्रजीत सिंह
राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

तोहसे बलम हम खेतिया करइबै।
विदेसवा में पिया जाइ न देब।।
हिल मिल के दोनों जन करबै किसानी।
नहर और ट्यूबेल से मिले पिया पानी।।
देसवा के अपने गिरनिया भगउबै।
विदेसवा में पिया जाइ न देब।।
वैज्ञानिक ढंग से हम करबै किसानी।
नया–नया बीज हम लिअउबै परनिया।।
करबै विकास देस आगे बढ़उबै।
विदेसवा में पिया जाइ न देब।।
पिया अन्न धन से हम भरबै भवनवा।
दो ही सुमन खिलहीं मोरे गुलसनवां।।
छोटा परिवार पिया आपन बनुउबै।
विदेसवा में पिया जाइ न देब।।
छुआ छूत वाली छोड़ बतिया पुरानी।
पैदा दहेजवा से होती बड़ी हानी।।
इन्द्रजीत सबही के गले से लगाउबै।
विदेसवा में पिया जाइ न देब।।

अन्तर्मन् की व्यथा

राजीव कुमार सिंह
राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

धधकती अन्तर्मन् में ज्वाला
जो है, बोलने को आतुर
पर !!! विवश है, असहाय है,
चुकाना होगा सत्य पर कर
सत्य बोलने का....... मुख खोलने का !
वह मुख,
जो हो चुका है, आदी
मिथ्या कर्म का !
परन्तु,
.... न पायेगा शान्ति
.... रहेगा व्याकुल हर पल।
क्योंकि,
... सत्य ही शिव है, यह जाना
शिव को ही सुन्दर माना
अतएव...... सुन्दर चित्त बना
उसमें शिव का सदन बना
पर क्या यह हो पायेगा....
क्या मानव आयेगा...... अपने स्वार्थो से ऊपर,
मुश्किल है–नामुमकिन् नहीं
इस मुश्किल को तू सहज बना
चित्त को, ''राजीव'' बना।
बना चित्त को सत्यशाला
न हो इसमें कलुषित हृदय वाला
धधकती अन्तर्मन् में ज्वाला।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का गीत

जय जय कृषि परिषद भारत की,
सुखद प्रतीक हरित भारत की,
कृषिधन, पशुधन मानव जीवन,
दुग्ध, मत्स्य, फल, यंत्र सुवर्धन,
वैज्ञानिक विधि नव तकनीकी,
पारिस्थितिकी का संरक्षण,
सस्य–श्यामला छवि भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।

हिम प्रदेश से सागर तट तक,
मरु धरती से पूर्वोत्तर तक,
हर पथ पर है, मित्र कृषक की,
शिक्षा, शोध, प्रसार सकल तक,
आशा स्वावलंबित भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।
जय जय कृषि परिषद भारत की।।

राजभाषा गतिविधियों की झलक

हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह में काव्य पाठ
प्रस्तुत करते हुए श्री प्रमोद द्विवेदी 'प्रमोद'

सर्वश्रेष्ठ हिन्दी प्रतियोगी 2013 का पुरस्कार प्राप्त करते हुए
श्री रामसकल चौरसिया, वैयक्तिक सहायक

पुरस्कार प्राप्त करते हुए डॉ. राजीव कुमार सिंह, वरिष्ठ वैज्ञानिक

पुरस्कार प्राप्त करते श्री राजबहादुर, तकनीकी सहायक

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)

कैनाल रिंग रोड, तेलीबाग, पो.ऑ. दिलकुशा, लखनऊ-226 002, उत्तर प्रदेश

फोन: 0522-2442441, 2442440, 2441735; *फैक्स:* 0522-2442403

ई-मेल: nbfgr@sancharnet.in; director@nbfgr.res.in

वेबसाइट : http://www.nbfgr.res.in

army printing press
www.armyprintingpress.com
Lucknow (0522) 6565333